

भगवद्भक्ति रत्नावली

और

काशी महात्म्य सहित विविध रत्न-संग्रह

रचयिता एवं संग्रहकर्ता

स्वामी उमेश्वरानन्द तीर्थ

तीर्थ प्रकाशन



भगवद्भक्ति रत्नावली

और

काशी महात्म्य सहित विविध रत्न-संग्रह

रचयिता एवं संग्रहकर्ता

स्वामी उमेश्वरानन्द तीर्थ

तीर्थ प्रकाशन

प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण (ठाकुरजी)

प्राप्ति स्थान—
१ श्री काशी मुमुक्षु भवन, अस्सी, वाराणसी
२ श्री रामजानकी मन्दिर खोरिपाकड़, बलिया

गंगादशहरा सं० २०४५, सन् १९८८ ई०

सहायतार्थ मूल्य ११ रु० मात्र

मुद्रक—
केशव मुद्रणालय
सुधाकर रोड, खजुरी, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

विषय | पृष्ठ सं०

भूमिका एवं मङ्गलाचरण

[प्रथम खण्ड]

भगवत् भक्ति महिमा, भगवत् कथा श्रवण की महिमा, भगवन्नाम की महिमा, भगवत् स्तुति की महिमा, भगवान् के पद कमल की महिमा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति की महिमा। १–७३

[द्वितीयखण्ड]

सुप्रभातम्, शिवरात्रि-व्रत कथा और महात्म्य, प्रदोष-व्रत कथा और महात्म्य, रुद्राक्ष धारण का महत्व तथा धारण का फल, विविध मुखों के रुद्राक्ष का महत्त्व, रुद्राक्ष धारण कीं विधि, विल्व पत्र तथा शिव-लिङ्ग की महिमा, भस्म धारण की महिमा, भस्म धारण करने की विधि ८१–१०७

श्री काशी महात्म्य तथा श्री काशीजी की उत्पत्ति, काशी मुक्ति निर्णय तथा काशी मुक्ति की श्रेष्ठता, श्री काशीजी की अन्तरगृही यात्रा, श्री काशीजी की पञ्चक्रोशी यात्रा। १०८–१२६

[तृतीय खण्ड]

विविध रत्न संग्रह, १८ पुराणों का मङ्गला चरण. शंकरकृत श्री राम ॐ द्राष्टक स्तोत्र, ब्रह्माकृत श्रीं सीता नवक स्तोत्र, पक्षीकृत श्री राम नवक स्तोत्र, समस्त पाप नाशक स्तोत्र, अहल्याकृत श्रीराम स्तोत्र (पापनाशार्थं पुत्र प्राप्त्यर्थं), पुनर्जन्म नाशक स्तोत्र, श्री प्रयागाष्टक स्तोत्र, श्री तुलसी स्तोत्र (तुलसी कवच), श्री कालभैरवाष्टक स्तोत्रम् दीक्षा ग्रहण महात्म्य सद्गुरु महात्म्य, श्रीकृष्ण का अवतार रहस्य। १३१–१५२

—:o:—

स्वामीजी का संक्षिप्त परिचय

स्वामी जी का जन्म सं० १९६४ में (नेपाल पशुपतिनाथ) के पूर्वाञ्चल में हुआ। बचपन में ही उनकी माँ (पवित्रा देवी) का निधन हो गया और पिता पुण्यदेव जी का समय सतसंग और भजन में वीतने लगा। पिता के साथ-साथ स्वामीजी भी सतसंग में लाभ उठाने लगे। भक्ति ज्ञान वैराग्य के उपार्जन में समय विताने लगे। संसार दुःख का समुद्र है ऐसा जानकर शुभ कर्म रूप साधन में शीघ्रता से लग गये, स्वदेश छोड़कर काशी नगरी के दर्शन के लिए चल पड़े। बलिया पहुँचने पर श्री पशुपतिनाथ वावा से भेंट हुई सत्संग हुआ और खोरिपाकड़ मन्दिर में रहने का आदेश हुआ। कठौता वावा (ब्रजवासी) जी महाराज ने साधना के साथ स्वाध्याय करने का आदेश दिया। स्वाध्याय समाप्ति के पश्चात् पशुपति वावा के आदेशानुसार गायत्री की उपासना की और उपासनापूर्ण करके गायत्री महायज्ञ के द्वारा गायत्री देवी की आराधना की और अनुष्ठानपूर्ण किया। पिता के देहावसान होने पर उनकी दैहिक क्रिया को पूर्ण किया और 'काशी मुमुक्षु भवन' में सं० २०३४ में स्वामी ऋद्धेश्वरानन्द तीर्थ जी से संन्यास ग्रहण किया और स्वामी उमेश्वरानन्द तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका पूर्णाश्रम का नाम (उमानाथ जी ब्रह्मचारी) था। अब स्वामीजी एक परिव्राजक के भेष से यत्र-तत्र पुण्य स्थलों में भ्रमण करते हैं। गंगा जी के तट पर विशेष रुचि रखते हैं। बलिया में खोरी पाकड़ मन्दिर में भी रहते हैं। चतुर्मासा में बनारस में रहते हैं। स्वाध्याय, भजन, एकान्तवास और शान्ति में ही रुचि रखते हैं।

—दुर्गा० एम० ए०



स्वामी उमेश्वरानन्द तीर्थ जी



श्री सरस्वत्यै नमः ।

श्री गणेशाय नमः ।

प्राक्कथन

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोहत्या बन्द हो। गोमाता की जय हो।
हर हर महादेव । ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी 'भगवत् भक्तिरत्नावली और काशी महात्म्य सहित विविधरत्न संग्रह' नाम से अलंकृत होकर आपके हाथ में है। परब्रह्म, परमात्मा की कृपा से भक्त जनों को आनन्दप्रद, मङ्गप्रद, श्रद्धा भक्ति और ज्ञान को प्रकाश करने वाला हो, इस विचार से इसको रचा गया है। इसमें श्रीमद्भागवत् महापुराण में व्यासादि मुनीन्द्रों तथा महात्माओं के मुखारविन्द से निकलकर भक्ति रस से युक्त भक्तिके महात्म्य को प्रकट करनेवाले विविध प्रसङ्गों को उद्धृत करके सानुवाद लिया गया है। वेद तथा पुराणों में या अन्यान्य ग्रन्थों में भगवान् की भक्ति को ही भगवत् प्राप्ति का सुगम साधन वताया है। इसको राजपथ की उपमा दी गयी है। जैसे राजपथ (डामररोड) में आँख बन्द करके चलने पर गिरने या फिसलने का भय नहीं रहता, उसी प्रकार भक्ति का मार्ग है। इसको अपनाने से सदा मङ्गल होता है। गिरने का भय नहीं होता। इसके विपरीत ज्ञान का मार्ग उत्तम होने पर भी दुर्गम तथा तलवार के धार में चलने के समान कठिन है। (कहा है क्षुरस्य धारा निसिता दुरत्यया) भक्ति में मार्ग में सभी गुण है। ज्ञान तथा वैराग्य की जननी भक्ति ही है। भक्ति को चिन्तामणि तथा कामधेनु की उपमा दिया हैं। संसार समुद्र को पार करने के लिए यह सुदृढ नौका है। अतः भक्त जनों को सर्व प्रथम भक्तिः

प्राप्त करना चाहिये। इसलिए इस छोटे ग्रन्थ में गोपद में सिन्धु को समावेश करने के समान प्रयाश किया गया है।

अब आइये हम भगवत् भक्ति रूपी मणि की माला का मनन करें। प्रसङ्गानुसार गान करे, सत्संग करें। श्रद्धाभक्ति के साथ उच्छलते हुए भक्तिरस का रसास्वादन करें। गद्‌गद् कण्ट से अपने प्रभु को पुकारें, जीवन को कृतकृत्य कर दें। भगवान् के चरणों में श्रद्धा सुमन की माला सर्मपित करें। ओम्।

प्रथम प्रकाशन में 'श्री गंगामहात्म्य सहित स्तुति रत्नावली', की माला प्रभु के चरणों में समर्पित की थी। श्रद्धाभक्ति सहित भक्तजन यथा सम्भव लाभान्वित हो रहे होंगे। पुनः परमात्मा की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का भी संकल्पपूर्ण होने जा रहा है। छप जाने पर भक्तों को लाभ होगा यह मेरी आकांक्षा है। प्रभु अवश्य पूर्ण करेंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥

—:o:—



श्री गणेशाय नमः । श्री सरस्वत्यै नमः

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

मङ्गलाचरणम्—श्री गणेश वन्दना

स्मरामि तं सुशान्तिदं गजाननं विनायकं,
सुशोभनं प्रियंकरममङ्गलं विनाशकम् ।
सुदंवतं सु शान्तिदं स, चन्द्रभाल शोभितं,
गिरीन्द्रकन्यकाङ्गजं नमाम्यहं गणाधिपम् ।

शिवाशिवयोस्तवनम्

हिमाञ्चलाञ्चले स्थितौ, सुशोभितावतीव तौ ।
महावने सुशोभने, सुचारु वासकारिणौ ॥
सदाशुभौ शिवाशिवौ, सुमङ्गलस्य दायकौ ।
दयानिधान तौ हि द्वौ, सुज्ञान दान तत्परौ ॥
विमुक्तिदान तत्परौ, नमाम्यहं सदाशिवौ ।
हिमाञ्चलाद्रि सन्निधौ, वटस्तले विराजितौ ॥
सुमङ्गलस्य दायकौ, नमामि तौ सदाशिवौ ।
भजामि तौ सदाशिवौ ॥

श्रीकृष्णस्तवनम्

निकुञ्जस्य मध्ये कदम्बस्यछाया, सरिता सु तीरे परितः सुशोभा ।
लसन्तं च राधा समालग्न मूर्ति, सदा माधुरी धुरिणं कृष्णमीडे ॥
रागान्धगोपीजन चुम्बिताभ्यां, योगीन्द्र भोगीन्द्र निसेविताभ्यम् ।
आताम्रं पंकेरूहकोमलाभ्यां, ताभ्यांपदाभ्यामयमञ्जलिर्मे ॥
'ब्रह्मादि जयसंरूढः दर्प कन्दर्प दर्पहा ।
जयति श्रीपतिगोपी रासमण्डलमण्डनः ।'
(इति मङ्गलम्)

।। ॐ श्री परमात्मने नमः ।।

अथ भगवत्भक्तिमहिमा

(मंगलम्) गोपीश्वरं गोपगणै सुसेवितं, गोपालवेषं गगनोपमंविभुम् ।
गोचारयन्तं विपिनेविहारिणं, तं वालकृष्णं प्रणमामिनित्यदा ।।

श्री नारद जी ने भगवान् की भक्ति कैसे प्राप्त की थी। वही प्रसंग 'श्रीमद्‌भागवत से यहां उद्धृत किया है—नारद जी पूर्व जन्म में दासी के पुत्र थे। सत्संग में उन्होंने भगवान् की भक्ति को पाया था। (पहले वे वेदवादी ब्राह्मण के दासी के पुत्र थे) महात्माओं के साथ सत्संग तथा भगवान् की कथा के श्रवण के प्रभाव से उन्हें भक्ति सुलभ हुई उन्होंने व्यास जी से कहा—

इत्थं शरद्प्रावृषिकावृतू हरेः, विश्रृण्वतोमेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभि, 'भक्तिः' प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ।।

भा १–५–२८

अर्थात्—सत्संग में इस प्रकार जिनके निर्मल यश का संकीर्तन वे महात्मा लोग करते थे, उसका नित्य प्रति श्रवण करते-करते वर्षा और शरद् ऋतुयें बीत गयीं इतने ही दिनों के सत्संग से रजोगुण और तमोगुण को नाश करने वाली 'भक्ति' मेरे हृदय में उत्पन्न हो गयी। माता के देहावसान होने पर मैं भगवान् की भक्ति में तल्लीन हुआ।

उनका ध्यान से मैंने दर्शन पाया। उन्होंने मुझे दूसरे जन्म में फिर दर्शन देने को कहा। इस जन्म में नहीं। तब मैं उनके भजन में समय विताने लगा। आयु पूर्ण होने पर मेरा पञ्चभौतिक शरीर पात हुआ जैसे विद्युत चमके और तिरोहित हो जाय। मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई। मैंने प्रलय की सारी क्रिया देखी और जाना। बहुत काल में पुनः ब्रह्मा के मानस पुत्रों में दिव्य शरीर पाया उस देह से भगवान् का साक्षात् दर्शन किया। उनकी आज्ञा से उनकी दी हुई देवदत्त नाम की वीणा को बजाते हुए हरिगुण गाते, विचरण करता हूँ ॥ (श्री कपिल मुनि ने देवहुति से कहा भक्ति का मार्ग सर्वश्रेष्ठ तथा सुगम है।)

भक्त्या पुमान् जातविरागऐन्द्रियात्, दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया।
चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो, यतिष्यते ऋजुभिर्योग मार्गैः ॥
असेवयायं प्रकृतेर्गुणानां, ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन।
योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥
विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं, जातस्नेहो यत्र तन्वभिजातः।
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं, प्रोवाच वै भक्ति वितानयोगः ॥

अर्थात्—उन्होंने कहा वह इस प्रकार प्रकृति के गुणों से उत्पन्न शब्दादि विषयों का त्याग करने से, वैराग्य युक्त ज्ञान से, योग से और मेरे प्रति दृढ़ भक्ति से मनुष्य मुझ सर्वान्तर्यामी को इस देह में ही प्राप्त कर लेता है ॥३।२५।२७॥ फिर मेरी सृष्टि आदि लीलाओं का चिन्तन करने से प्राप्त हुई भक्ति के द्वारा लौकिक तथा पार-

लौकिक सुखों से वैराग्य होने से मनुष्य सावधानता पूर्वक योग के भक्ति प्रधान सरल उपायों से, समाहित होकर मनोनिग्रह के लिये यत्न करे ।। ३।२५।२६ ।। "मैत्रेय जी ने कहा—जिसके शरीर से उन्होंने स्वयं जन्म लिया था। उस अपनी माता का ऐसा अभिप्राय जानकर कपिल जी के हृदय में स्नेह उमड़ा और वे प्रकृति आदि तत्त्वों का निरुपण करने वाले शास्त्र (सांख्य) तथा 'भक्ति' के विस्तारक साधनों का वर्णन करने लगे ।। ३।२५।३१ ।।

इदं पवित्रं परमेशचेष्टितं, यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ।
योनित्यदाऽकर्ण्यनरोनुकीर्तयेद्, धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ।।
भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दवाष्पकलथामुहुरर्द्यमानः ।
विक्लिद्यमान हृदयःपुलकाचिताङ्गो,नात्मानमस्मरदसावितिमुक्तलिङ्ग

अर्थात्—हे कुरुनन्दन ! महादेवजी का पावन चरित्र, यश और आयु को बढ़ाने वाला तथा पापों को नष्ट करने वाला है। जो पुरुष भक्ति भाव से इसका नित्य प्रति श्रवण और कीर्तन करता हैं उसकी संसार की वासना नष्ट हो जाती है ।। फिर मैत्रेय जी ने ध्रुव के लिये कहा— इसी प्रकार भगवान् श्री हरि के निरन्तर भक्तिभाव का प्रवाह चलते रहने से उनके नेत्रों में बारंबार आनन्दाश्रुओं की बाढ़ सी आ जाती थी, इससे उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और शरीर में रोमाञ्च हो आया, फिर देहाभिमान गलित हो जाने से उन्हें मैं ध्रुव हूँ इसकी सुधी भी न रही ।। ४।१२।१८ ।। मैत्रेयजी ने विदुरजी से कहा—

त्वंप्रत्यगात्मनि तदाभगवत्यनन्त, आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिविधायपरमाशनकैरविद्या, ग्रन्थि विभेत्स्यतिममाहमितिप्ररूढम् ।
ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठं, भाषारुणायिततनुद्विजकुन्दपंक्ति ।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्यविष्णोः, भक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमनानपृथग्दिक्षेत्

अर्थात्—हे विदुर ! ऐसा करने से सर्व शक्तिसम्पन्न परमानन्द स्वरूप सर्वान्तिर्यामी भगवान् अनन्त में तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति होगी और उसके प्रभाव से तुम मेरेपन के रूप में दृढ़ हुई अविद्या की गाँठ काट डालोगे ।। और ध्यान करने से अत्यन्त प्रेमार्दभाव से अपने हृदय में विराजमान श्रीहरि के मन्द मुसकान का ध्यान करे, जो वस्तुतः ध्यान के ही योग्य है । तथा जिसमें ऊपर और नीचे दोनों होठों की अत्यधिक अरुण कान्ति के कारण कुन्दकली के समान सुन्दर छोटे छोटे दाँतों पर लालिमा भी प्रतीत होने लगी है । इस प्रकार उनके ध्यान में तन्मय होकर फिर उनके सिवा अन्य किसी को या कोई पदार्थ को देखने की इच्छा न करे । दूसरी ओर भूलकर भी मन को न लगावें ।।३।२८।३३।। भक्ति के प्रसङ्ग में प्रहलाद जी ने इसी प्रकार कहा है—

एवं हि हिलोकाःक्रतुभिः कृताअमी, क्षयिष्णवः सातिशयाननिर्मला ।
तस्माददृष्टश्रुत दूषणंपरं, भक्त्यैकयेशंभजतात्मलब्धये ।।७।७।४०।।
मन्येधनाभिजनरूपतपःश्रुतौज, स्तेजप्रभावबलपौरुष बुद्धियोगः ।
नाराधनायहि भवन्ति परस्यपुंसो, भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ।।

अर्थात्—हे दैत्यबालकों ! जैसे कोई इस लोक की सम्पत्ति

प्रत्यक्ष ही नाशवान् है वैसे ही यज्ञों से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान् और अपेक्षिक एक दूसरे से छोटे बड़े उच नीच है। इसलिये वे भी निर्दोष नहीं है, केवल भगवान् का न तो किसी ने उनमें दोष देखा है न सुना है ? अतः परमात्मा की प्राप्ति के लिये अनन्य 'भक्ति' से उन्हीं परमेश्वर का भजन करना चाहिए। हे प्रभो मैं— मानता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग से सभी गुण परम पुरुष भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं है। परन्तु 'भक्ति' से भगवान् गाजेन्द्र पर भी प्रसन्न हो गये थे ॥ ७।९।९ ॥ "इसी प्रकार कपिल मुनि जी ने कहा कि भगवान् के अङ्ग प्रत्यङ्ग के विधिपूर्वक नख से शिख तक ध्यान करने से ध्यान के अभ्यास से साधक का श्री हरि में प्रेम हो ज़ाता है। उसका हृदय द्रवित हो जाता है, शरीर में आनन्द के अधिकता से रोमाञ्च होने लगता है। उत्कण्ठा जनित प्रेमाश्रुओं की धारायें वहकर वह बारबार अपने शरीरको नहलाता है। फिर मछली पकड़ने के कांटे के समान श्रीहरि को अपनी ओर आकर्षित करने के साधन रूप अपने को भी शनैः शनैः ध्येय वस्तु से हटा लेता है। इत्यादि। एवं (हरौ भगवति प्रतिलब्ध भावो)। इसी तरह प्रहलाद जी ने दैत्य पुत्रो को भगवान् की भक्ति करने के लिये कहा जव तक भगवान के दिव्य गुण, दिव्य लीला, आदि के स्मरण करने से हर्ष के मारे रोमाञ्च, आनन्दाश्रु, तथा कण्ठ का अवरोध होना आदि के द्वारा कभी गाना कभी रोना कभी नाचना आदि भाव में डुब जाय—

तदा पुमान् मुक्त समस्त बन्धन, तद्भावभावानु कृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धवीजानुशयोमहीयसा, भक्तिप्रयोगेण समेत्यऽधोक्षजम् ।।
नयस्यसाक्षात् भवपद्जादिभी रूपंधियावस्तुतयोपवर्णितम् ।
मौनेन भक्त्योपसमेन पूजितः, प्रसीदतामेष स सात्वतांपतिः ।।

अर्थात्—जब भक्त भगवान् में ही तन्मय हो जाता है और संकोच छोड़कर स्वाँस-स्वाँस में हरे जगत्पते ! नारायण !! कहकर पुकारता हैं तब भक्तियोग के प्रभाव से सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवत् भक्ति की ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार (भगवन्मय) हो जाता है । उस समय उसके जन्ममृत्यु के वीजों का पुञ्ज ही जल जाता है और वह पुरुष भगवत्प्राप्ति कर लेता है। (इस अशुभ संसार के दलदल में अशुभमय बन जाने वाले जीव के लिये भगवान् की यह प्राप्ति संसार चक्र को मिटा देने वाली है) ।७।७।३६। युधिष्ठिर कहते है कि तुम और हम बड़े भाग्यशाली है तुम्हारे प्रियहितैषी ममेरे भाई पूज्य आज्ञाकारी गुरु और स्वयं आतमा श्रीकृष्ण है । शंकर व्रह्मादि भी अपनी बुद्धि लगाकर (वह यह है) इस रूप में उनका वर्णन नहीं कर सके, फिर हम तो कर ही कैसे सकते है । हम तो मौन और भक्ति रस और संयम द्वारा ही उनकी पूजा करते है, वे भगवान् हम भक्तों के प्रति परम प्रसन्न हों ।। भक्त शिरोमणि श्री प्रहलाद जी ने वामन भगवान से कहा—

चित्रा तवेहितमहोऽमितयोगमाया, लीलाविसृष्टभुव्नतस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मनःसमदृशो विसमःस्वभावो,भक्तिप्रियोयदसिकल्पतरु स्वभावः।।

"भगवन् ? आपका स्वभाव कभी-कभी विषमतापूर्ण मालूम पड़ने लगता है, क्योंकि आपका और कल्पवृक्ष का स्वभाव एक सा है, कल्पवृक्ष अपने आश्रितों को मनचाही वस्तु देता है, वैसे ही आप अपने प्रेमी भक्तों से प्रेम करते हैं। इसीलिये आपके समदर्शी होने पर भी जो आपकी भक्ति करेगा वह तो आपके विशेष कृपा प्रसाद का पात्र होगा ही ।। इत्यादि। देवताओं ने भी इसी प्रकार भगवत् भक्ति की महिमा बतायी है।

यच्छ्रद्धयाश्रुतवत्या च 'भक्त्या' संसृज्यमाने हृदयेऽवधाय।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ।।
तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षित वामसूक्तैः ।
हृतात्मनोहृतप्राणाश्चभक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ।।

और कहा है जिन्होंने श्रद्धा और श्रवण कीर्तन आदि भक्ति से निर्मल हुए अपने अन्तःकारण में धारण करके कितने ही लोग वैराग्य सहित ज्ञान से सम्पन्न होकर परम बोधवान् हो जाते हैं और उन आपके चरण कमलों की पादुका का आश्रय लेते है ।।३।५।४१ ।। पुनः कपिलदेवहूती संवाद में भी भक्ति का यही प्रसंग वर्णित है। हे माता! दर्शनीय अङ्ग-प्रत्यङ्ग उदारहास विलास मनोहर चितवन और सुमधुर वाणी से युक्त मेरे उन रूपों की माधुरी में मन और इन्द्रियों के फंस जाने से वे मुक्ति की इच्छा तो नही करते, किन्तु मेरी 'भक्ति' उन्हें परम पद की प्राप्ति करा देती है ।। राजा रहुगण ने कहा—

नहचद्भुतंत्वच्चरणाब्जरेणुभि, र्हतांहसोभक्तिरधोक्षजेऽमला।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्चमे, दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेक ।५।१४।२२।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना, सर्वैर्गुणैस्तत्र समासतेसुराः ।
हरावभक्तस्य कुतोमहद्गुणा, मनोरथेनासतिधावतोवहिः ।५।१८।१२।

भरतजी ! आपके चरण कमलों के धूलि सेवन करने से जिनके सारे पाप ताप नष्ट हो गये हैं, उन महानुभावों को भगवान् की विशुद्ध 'भक्ति' प्राप्त होना कोई विचित्र बात नहीं है। मेरा तो आपके एक मुहूर्त के सङ्ग से ही सारा कुतर्क मूलक अज्ञान नष्ट हो गया ।। ५।१४।२२ ।। श्री शुकदेवजी ने कहा—जिस पुरुष का भगवान् में निष्काम 'भक्ति' है, उसके हृदय में समस्त देवता, धर्म, ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणों के सहित सदा निवास करते हैं। जो भगवत् भक्त नहीं हैं, उसमें तो महापुरुष के लक्षण आ ही नहीं सकते। वह तरह तरह के संकल्प करके निरन्तर बाहर के विषयों में ही दौड़ता रहता है। श्री शुकदेव ने पुनः कहा—

इदंहियोगेश्वर योगनैपुणं, हिरण्यगर्भो भगवान् जगादयत् ।
यदन्तकालेत्वयिनिर्गुणेमनो, भक्त्यादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ५।१९।१३

योगेश्वर हिरण्य गर्भ श्री ब्रह्माजी ने योग साधन की सबसे बड़ी कुशलता यही बतलाई है कि मनुष्य अन्तकाल में देहाभिमान को छोड़ कर भक्ति पूर्वक आपके प्राकृत गुण रहित स्वरूप में मन लगावे ।। राजा परीक्षितजी ने श्री शुकदेवजी से कहा—आप और भगवान् की लीलाओं का वर्णन कीजिये। यह सुन कर शुकदेवजी बोले—

यच्छृन्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा, सत्वं च शुद्धयत्यचिरेणपुंसः।
भक्तिर्हरौतत्पुरुषेचसख्यं तदेवहारं वदमन्यसे चेत्। १०।७।२।
पुरेह भूमन्बहवोऽपियोगिन, स्त्वदर्पितेहानिजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनितया, प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युततेगतिंपराम्॥

अर्थात्—भगवान् की लीलायें हमारे हृदय को बहुत प्रिय लगती है। उनके श्रवण मात्र से भगवत् सम्बन्धी कथा में रुचि और विविध विषयों की तृष्णा नष्ट हो जाती है। मनुष्य का अन्तःकरण जल्दी से जल्दी शुद्ध हो जाता है। भगवान् के चरणों में 'भक्ति' और उनके भक्तजनों से प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। मुझे उनके श्रवण का अधिकारी समझे तो भगवान् की उन्हीं लीलाओं का वर्णन कीजिये॥ १०।७।२। ब्रह्माजी भी कहते हैं—हे अच्युत्!! अनन्त!! इस लोक में पहले भी बहुत लोग योगी हो गये हैं जब उन्हें योगादि के द्वारा आपकी प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक तथा वैदिक सब कर्म आपके चरणों में समर्पण कर दिया। उन समर्पित कर्मों से तथा आपकी लीला कथा से उन्हें आपकी 'भक्ति' प्राप्त हुई। उस भक्ति से ही आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमता से आपके परमपद की प्राप्ति कर ली। इसलिये—

श्रेयस्त्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो, क्लिश्यन्ति येकेवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशलएवशिष्यते, नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनम्॥
भक्तिः परेषानुभवोविरक्ति, रन्यत्रचैषत्रिकएककाल।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टि पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्
।११।२।४२।

हे प्रभो ! आपकी भक्ति सब प्रकार के कल्याण का मूल स्रोत (उद्‌गम) है, जो लोग उसे छोड़ कर केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रम उठाते हैं और दुःख भोगते हैं, उनको क्लेश ही क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं, जैसे भूसी कूटने वालों को श्रम ही मिलता। चावल नहीं मिलता है ।। आदि ।। नवयोगेश्वर जनक सम्वाद में कहा है—जैसे भोजन करने वालों को प्रत्येक ग्रास में तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा की निवृत्ति ये तीनों एक साथही पूर्ण हो जाते हैं। वैसे ही जो मनुष्य भगवान् का शरण लेकर उनका भजन करने लगता है, उसे भजन के प्रत्येक क्षण में भगवान् के प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद प्रभु के स्वरूप का अनुभव और उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं में वैराग्य, इन तीनों की एक साथ ही प्राप्ति हो जाती है।

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोनुवृत्या, भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजन्, ततःपरांशान्तिमुपैति साक्षात् ।
यहर्च्‌ब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या, चेतोमलानिविधमेत् गुणकर्मजानि
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यतआत्मतत्त्वं, साक्षात् यथामलदृशोःसवितृ
प्रकाशः ।। ११।३।४० ।।

अर्थात्—इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक एक वृत्ति के द्वारा भगवान् के चरण कमलों का ही भजन करता है, उसे भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसार से विरक्ति और अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप की स्फूर्ति ये सब अवश्य ही प्राप्त होते हैं। वह भागवत् हो जाता है, तब परमशान्ति का अनुभव करने लगता है। जब भगवान्

कमलनाभ के चरण कमलों को प्राप्त करने की इच्छा से तीव्र 'भक्ति' की जाती है तब वह भक्ति ही अग्नि की भाँति (गुण और कर्मों की भाँति) गुण और कर्मों से उत्पन्न हुए चित्त के सारे मलों को जला डालती है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब आत्म तत्त्व साक्षात्कार हो जाता है। जैसे नेत्र के निर्विकार हो जाने से सूर्य के प्रकाश की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है ।। ११।३।४० ।। अब भक्ति की प्रगाढ़ अवस्था का वर्णन करते हैं—

वाक् गद्गदा द्रवतेयस्यचित्तं, रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायतिनृत्यते च, मद्भक्ति युक्तोभुवनं पुनाति ।।
यथाग्निना हेममलं जहाति, ध्मातं पुनः स्व भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय, मद्भक्तियोगेनभजत्यथोमाम् ।।

अर्थात्—जिसकी वाणी प्रेम से गद् गद् हो रही है चित्त पिघल कर एक ओर वह रहा है, एक क्षण के लिये भी रोने का तांता नहीं छूटता परन्तु कभी कभी हँसने भी लगता है, कभी लज्जा छोड़ कर ऊँचे स्वर से गाने लगता है, कभी नाचने लगता है, भगवान् कहते हैं, मेरा वह भक्त केवल अपने को नहीं सारे संसार को पवित्र करता है। जैसे आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ देता है, निरख जाता है और असली रूप में स्थित हो जाता है, वैसे ही मेरे भक्ति योग से कर्म वासनाओं से मुक्त भक्त मुझको ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उस भक्त का वास्तविक स्वरूप हूं ।। ११।१४।२५ ।। साधक के लिये ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होने पर भी कहा है—

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो, गुणेषु माया रचितेषु तावत् ।
मद् भक्तियोगेन दृढ़ेन यावद्, रजोनिरस्येत मनःकषायः ११।२८।२७
ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैत, द्वैराग्य विज्ञानयुतं पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्तेत्वद्भक्तियोगंचमहद्विमृग्यम् ११।१९।८

अर्थात्—त्रिगुण मयी माया से उपराम हो जाने पर भी तब तक इन माया निर्मित गुणों और उनके कार्य का सङ्ग सर्वथा त्याग देना चाहिये, जब तक मेरे सुदृढ़ भक्ति योग के द्वारा मन का रजोगुज रूप मल एकदम निकल न जाय ।। ११।२८।२७ ।। उद्धव जी कहते हैं हे विश्व मूर्ति भगवान् आपही विश्व के स्वामी हैं, आपका यह वैराग्य और विज्ञान युक्त सनातन एवं विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार सुदृढ़ हो जाय उसी प्रकार मुझे स्पष्ट करके समझाइये। उस अपने भक्ति योग का भी वर्णन कीजिये, जिससे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी ढूँढ़ते रहते हैं ।। ११।१९।८ ।।

इत्थंहरेर्भगवतो रूचिरावतार, वीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि।
अन्यत्रचेहचश्रूतानिगृणन् मनुष्यो, भक्ति परांपरमहंस गतौलभेत।
यस्तूत्तम श्लोकगुणानुवादः, संगीयतेऽभिक्षणममङ्गलघ्नः ।
तमेवनित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं, कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः १२।३।१५

अर्थात्—जो मनुष्य इस प्रकार भक्तभयहारी भगवान् निखिल सौन्दर्य माधुर्य सिन्धु श्रीकृष्णचन्द्र के अवतार सम्बन्धी रुचिर पराक्रम तथा इस श्रीमद्भागवत् पुराण में तथा दूसरे पुराणों में वर्णित परमानन्दमयी बाल लीला किशोर लीला आदि का गान करता है, वह

परमहंस मुनीन्द्रों के अन्तिम प्राप्तव्य श्रीकृष्ण के चरणों में 'पराभक्ति' प्राप्त करता है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवाद समस्त अमङ्गलों को नष्ट करने वाला है। बड़े-बड़े महात्मा उसी का गान करते हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेममयी 'भक्ति' की इच्छा रखते हों। उन्हें नित्य निरन्तर भगवान् के दिव्य गुणानुवाद का ही श्रवण करते रहना चाहिये ॥ १२।३।१५ ॥ अन्त में भागवत् की महिमा का गुण गान करते हैं—

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं
यस्मिन् पारमहंस्य मेवममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन्प्रपठन् विचारणपरोभक्त्याविमुच्येन्नरः ॥ ६।८२ ॥

अर्थात्—यह श्री मद्भागवत् पुराणों का शिरोमणि है, विष्णु भक्तों का धन है। इसमें परमहंसों के प्राप्य विशुद्ध ज्ञान का ही वर्णन किया गया है। ज्ञान वैराग्य और भक्ति के सहित निवृत्ति मार्ग को प्रकाशित किया है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसको श्रवण, पाठ और मनन करता है वह मुक्त हो जाता है॥ भक्ति की महिमा तथा नाम कीर्तन की महिमा का वर्णन करते हुए भक्ति पथ के प्रसिद्ध सन्त चैतन्यमहाप्रभु ने अपनी भाषा में नवधा भक्ति का तथा नाम का महत्व वर्णन करते हुए कहा—

"भजनेरमध्ये श्रेष्ठ नवविधाभक्ति। कृष्णप्रेम कृष्णादिते धरे महाशक्ति तारमध्ये श्रेष्ठनाम संकीर्तन। निरापराध नाम हैतेहय

प्रेमधन। एकनाम कृष्णकरेसर्वपापक्षय। नवविधा भक्ति पूर्णनाम हैतेहय। नाम संकीर्तन है ते सर्वानिर्थनाश। सर्वशुभोदय कृष्णप्रेमेर उल्लास। कृष्णमन्त्र हैतेहवे संसारमोचन। कृष्णनाम महामन्त्रेर एइतस्वभाव। जइजपे तार कृष्णे उपजयेभाव। कृष्णजपे निशदिन मिटेभव दाव।"

अर्थात्—भजन में सर्वश्रेष्ठ स्थान नवधा भक्ति का है। श्रीकृष्ण प्रेम (भक्ति) महाशक्ति को धारण करने वाले श्री कृष्ण ही प्रदान करते हैं। स्मरण करने वालों को तारने वाला नाम कीर्तन श्रेष्ठ है। दसनामापराधरहित भक्ति ही नवधा भक्ति का धनी है। एक श्रीकृष्ण नाम ही सभी पापों का नाश करने वाला है। जिसकी नाम कीर्तन में निष्ठा है, उसमें नवधा भक्त परिपूर्ण है। नाम संकीर्तन से सभी अनर्थों का नाश हो जाता है। श्री कृष्ण में उल्लास (श्रद्धा) से सभी कल्याण का उदय होता है। श्री कृष्ण मन्त्र संसार से मुक्त करने वाला है। महा मन्त्र श्री कृष्ण नाम का यही स्वभाव है। जो श्री कृष्ण नाम का कीर्तन करता है उसमें भक्ति का उद्रेक होता है। भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

श्री मद्भागवत् कथा श्रवण की महिमा

श्री नारदजी ने सनकादि मुनीश्वरों से पूछा, भगवान् श्री कृष्ण की कथा श्रवण का क्या महत्त्व है? तब मुनीश्वरों ने कहा भागवत् पुराण शब्द ब्रह्म मय है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति के प्राप्ति के लिये प्रकाशित किया गया है। इस श्री मद्भागवत् की 'कथा' सुनने मात्र से शोक और दुःखादि का नाश कर देता है। तदनन्तर नारदजी ने कहा—

"यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानिसद्यः,
श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम्।
निःशेषशेष मुखगीत कथैक पानाः,
प्रेमप्रकाश कृतये शरणंगतोऽस्मि। २।७५।
भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन,
सत्संगमं च लभते पुरुषोयदा वै।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार,
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः"। २।७६।

सनकादि मुनीश्वरो! आप लोगों का दर्शन जीवों के सम्पूर्ण पापों को तत्काल नष्ट कर देता है, और जो लोग संसार के दुःख दावानल से तपे हुए हैं उन पर शीघ्र ही शान्ति की वर्षा करता है। आप लोग निरन्तर शेषजी के हजारों मुखों से भगवत् 'कथामृत'

का पान करते रहते हैं। मैं प्रेम लक्षण भक्ति का प्रकाश करने के लिए आपकी शरण लेता हूँ। युग युगान्तर जन्म जन्मान्तर के पुण्य पुञ्ज के एकत्र उदय होने से ही मनुष्य को सत्संग मिलता है तभी उसे अज्ञान जनित मोह और मद रूप अन्धकार का नाश कर देता है, ज्ञान और विवेक का उदय हो जाता है। सनकादि मुनीश्वरों ने नारद जी से कहा जो लोग कथा श्रवण से दूर रहते हैं उनका जीना व्यर्थ है क्योंकि—

आजन्म मात्रमपि येन शठेन किञ्चिच्चिरां विधाय शुक शास्त्र कथा न पीता।
चाण्डाल वच्चखरवद् वततेन नीतं, मिथ्या स्वजन्मजननी जनि दुःख भाजा॥
जीवच्छवोनिगदितः स तु पाप कर्मा, येन श्रुतं शुककथा वचनं न किंचित्।
धिक्तं नरं पशुसमं भुविभार रूप, मेवं वदन्ति दिविदेव समाज मुख्याः॥

अर्थात्—जिस दुष्ट ने अपनी सारी आयु में चित्त लगा कर श्रीमद्भागवत् कथामृत् का थोड़ा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने तो अपना सारा जीवन चाण्डाल और गधे के समान व्यर्थ गँवाया है, उसने अपनी माता को प्रसव पीड़ा पहुँचाने के लिये जन्म लिया है। और जिसने भागवत् 'कथा' के थोड़े से भी वचन नहीं सुने वह पापात्मा तो जीता हुआ भी मुर्दे के समान है। पृथ्वी के भार स्वरूप उस पशु तुल्य मनुष्य को धिक्कार है। ऐसा स्वर्ग लोक में देवताओं

के प्रधान इन्द्र आदि कहा करते हैं ।। श्री सूतजी ने भी कहा है कि भगवान् की कथा अति दुर्लभ और अलौकिक है ।

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः, सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ।
मूढाः शठाये ये पशुपक्षिणोऽत्र, सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ।।
अतोनृलोके ननु नास्ति किञ्चित्, चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव 'कथा' समानं भुवि नास्ति चान्यत् ।।

भा० मा० ४।६।८।

अर्थात्—हे मुनीश्वरों आज सप्ताह भागवत् 'कथा' श्रवण की मैंने यह बड़ी अलौकिक महिमा देखी । यहाँ तो जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु पक्षी हैं, वे सभी निष्पाप हो गये हैं । इसलिये इसमें सन्देह नहीं कि इस कलिकाल में चित्त की शुद्धि के लिये, तथा पाप-पुञ्ज का नाश करने वाला भागवत् 'कथा' के समान मर्त्य लोक में कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है ।

के के विशुध्यन्ति वदन्तु मह्य', सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य, प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ।।

भा० मा० ४।१० ।

कुमाराऊचुः —

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा, सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ।।

अर्थात्—हे मुनीश्वरों ! आप लोग बड़े कृपालु हैं । कृपा करके यह तो बतलाइये कि इस 'कथा' रूपी सप्ताह यज्ञ द्वारा संसार में कौन-कौन लोग पवित्र होते हैं । लोक कल्याणार्थ विचार करके कोई नवीन

रास्ता निकाला है ? इसके उत्तर में मुनीश्वरों ने बताया—जो लोग सदा तरह तरह के पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचार में ही रत रहते हैं और उलटे मार्ग में चलते हैं तथा जो क्रोधाग्नि से जलते रहने वाले कुटिल और कामी हैं वे भी इस कलियुग में भागवत् सप्ताह 'कथा' रूपी यज्ञ से पवित्र हो जाते हैं। और भी अनेक प्रकार के पापियों का उद्धार हुआ है—धुन्धुकारी जैसा पापी अपने पापों से प्रेत हो गया था। वह भी साक्षात् वैकुण्ठ में चला गया (आदि)।। गोकर्ण मुनि ने आत्मदेव ब्राह्मण को उपदेश देते हुए कहा कि तुम संसार का प्रपञ्च छोड़ कर भगवत् भजन करो। क्योंकि—

धर्मं भजस्व सततं त्यजलोकधर्मान्,
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि काम तृष्णाम्।
अन्यस्य दोष गुणचिन्तन माशु मुक्त्वा,
सेवा 'कथा' रसमहोनितररांपिवत्वम्।।

ब्रूमोऽत्रते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं, सप्ताह यज्ञेन कथासुसंचितम्।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः पीताश्चते गर्भगता न भूयः।।
वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैः, तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै, सप्ताह गाथाश्रवणेन यान्तियाम्।।
भा० मा० ५।८७।८८।

अर्थात्—भगवत् भजन ही सबसे बड़ा धर्म है निरन्तर उसी का आश्रय लेना चाहिये। अन्य सब प्रकार के लोक धर्मों का अन्त में परित्याग करना चाहिये। सदा साधु सन्तों की सेवा करनी चाहिये, काम भोगों की इच्छा का त्याग कर दे, दूसरे के गुण दोषों का विचार

न करे, भगवान् की सेवा और कथा के रस का ही निरन्तर पान करता रहे।। और भी श्री हरिदासों ने कहा है। इस सप्ताह यज्ञ द्वारा 'कथा' श्रवण करने से जैसा उज्ज्वल फल सञ्चित होता है उसके विषय में हम क्या कहें, जिन्होंने अपने कर्ण पुटों से गोकर्णजी की कही हुई भागवत् 'कथा' के एक अक्षर का भी पान कर लिया था वे फिर माता के उदर में नहीं आये। जो लोग जिस गति को जल व वायु पीकर और पत्ते खाकर शरीर सुखाने से, बहुत दिन घोर तप करने से और योग का अभ्यास करने से भी नहीं पा सकते उसे सप्ताह 'कथा' श्रवण से सहज ही पा लेते हैं।। स्वयं भक्ति ने भी कहा हे सनकादि मुनिश्वरों !

"भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा, कलि प्रणष्टापि 'कथा' रसेन।
क्वाहं तु तिष्टाम्यधुना ब्रुवन्तु, ब्रह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ।।३।७०।।
सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या,
निवसति हृदि येषां श्री हरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय,
प्रविशति हृदि तेषां भक्ति सूत्रोपनद्धः ।।
भा० मा० ३।७३।

मैं इस कलिकाल में नष्टप्राय हो गई थी अब आप लोगों ने 'कथा-मृत' से सींच कर मुझे पुष्ट किया है। आप यह तो बताइये कि मैं कहाँ रहूँ ? यह सुन कर सनकादि ने उससे कहा तुम भक्त जनों को भगवान् का स्वरूप प्रदान करने वाली हो और अनन्य प्रेम का सम्पादन करने वाली भी और संसार रोग को निर्मूल करने वाली हो, अतः तुम धैर्य धारण करके नित्य निरन्तर भगवत् भक्तों के हृदय में

वास करो। 'तब भक्ति ने' भक्तों के हृदय में प्रवेश किया। इसलिए कहा गया है कि सम्पूर्ण लोकों के बीच में निर्धन होने पर भी वे लोग धन्य हैं जिनके हृदय में श्री हरि की एक मात्र भक्ति निवास करती है। उस—भक्ति के प्रभाव से श्री हरि भी निज 'बैकुण्ठ लोक' का सर्वथा त्याग करके भक्ति रूपी सूत्र में बँध कर भक्तों के हृदय में प्रवेश करते हैं॥ (जिस स्थान में गो कर्ण मुनि श्री मद्भागवत् की कथा सुना रहे थे वहाँ पर परमवितराग श्री शुकदेव जी स्वयं पधारे थे।)

"तत्राययौ षोडषवार्षिकस्तदा, व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः।
कथावसाने निज लाभपूर्णः, प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः॥
॥ ६।७८॥

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिवन भागवतं रसमालयं, मुहुरहोरसिका भुविभावुकाः॥
भा० मा० ६।८०

वे वहाँ घूमते-घूमते योगेश्वर शुकदेव जी भी चले आये, व्यास पुत्र शुकदेव मुनि की आयु प्रायः सोलह वर्ष की जान पड़ती थी वे आत्म लाभ से ही तृप्त रहते थे, उन्हें किसी लौकिक या अलौकिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं थी, ज्ञान रूप महासागर के तो वे साक्षात् पूर्ण चन्द्र ही थे वे ठीक 'कथा' समाप्ति के समय पहुँचे थे, उस समय भी वे धीरे-धीरे प्रेम पूर्वक श्री मद्भागवत् का ही पाठ कर रहे थे॥ ६।७८॥ वे कह रहे थे कि हे भक्ति रसके मर्मज्ञ एवं भक्ति भाव से छलकते हुए हृदय वाले भक्त जनों! यह श्री मद्भागवत् वेदरूप

कल्प वृक्ष का पका हुआ फल है, शुकदेव रूप तोते के मुख से सम्बन्ध होने से परमानन्दमयी सुधा का यह मूर्तिमान मधुर रस ही है। (इसमें छिल्का गुठली आदि त्याज्य अंश जरा भी नहीं है) जब तक शरीर में चेतना रहे, तथा जब तक संसार का प्रलय न हो जाय, तब तक इस रस का बार बार पान करते रहो ॥ ६।८० ॥ श्री गोकर्ण मुनि से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए गोकर्ण तथा अन्य श्रोतागणों से कहा—

"मत्तो वरं भाव वृताद् वृणुध्वं, प्रीतः 'कथा' कीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम्।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमति प्रसन्नाः, प्रेमार्दचित्ता हरिमूचिरे ते ॥
॥ ६।८८ ॥

नगाहगाथासु च सर्व भक्तैः, रेभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात्।
मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेतिचोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ॥
॥ भा० मा० ६।८६ ॥

इस लौकिक 'कथा' और कीर्तन को देख कर भगवान् प्रसन्न हो गये और कहने लगे—मैं तुम्हारी इस 'कथा' और कीर्तन से बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्ति भाव ने मुझे वश में कर लिया है, अतः तुम लोग वर माँगो। भगवान् के ये बचन सुनकर सव लोग प्रसन्न हो गये और प्रेमार्द्र चित्त से भगवान् से कहने लगे हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्य में भी जहाँ कहीं श्री मद्भागवत की 'कथा' हो वहाँ आप पार्षदों के सहित अवश्य दर्शन दें, हमारी यही अभिलाषा है, इसे पूरी होनी चाहिये। यह सुन कर अच्युत भगवान् तथास्तु कह

कर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ६।८९ ॥ तब नारद जी ने भगवान् तथा उनके पार्षदों के चरणों को लक्ष्य करके प्रणाम किया, फिर शुकदेव आदि तपस्वियों को भी नमस्कार किया। 'कथामृत का' पान करने से सब लोगों को बड़ा आनन्द मिला, उनका सारा मोह नष्ट हो गया फिर वे सब लोग अपने अपने स्थान को चले गये। (उस समय श्री शुकदेव जी ने भक्ति को उनके पुत्रों सहित श्री मद्भागवत शास्त्र में स्थापित कर दिया)। अतः भागवत् सुनने से भगवान् श्रीकृष्ण उनके हृदय में आ विराजते हैं। दुःख दरिद्रता रूपी ज्वर से जले हुए लोगों का, माया पिशाची द्वारा मर्दितों का, तथा संसार सिन्धु में गिराये गये लोगों का, कल्याण करने के लिये श्री मद्भागवत् की 'कथा' गर्जती है ॥ श्री सूतजी ने शौनक आदि ऋषियों से कहा हे मुनीश्वरों !

कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च,
मुक्त्येक हेतुमिह भक्तिविलासकारि।
सन्तः कथानकमिदं पिवतादरेण,
लोके हि तीर्थ परिशीलनसेवया किम् ॥
स्व पुरुषमपि वीक्ष पासहस्तं,
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्,
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥
॥ ६८।६९ ॥

अर्थात्—आप लोग आदरपूर्वक इस 'कथा' अमृत का पान कीजिये, यह कथा श्री कृष्ण को अत्यन्त प्रिय सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली, मुक्ति का एक मात्र कारण और भक्ति को बढ़ाने वाली है, लोक में अन्य वहुत कल्याणकारी साधनों का विचार करने से क्या लाभ है ॥ ६।९८ ॥ यमराज जी स्वय अपने दूतों से कान में धीरे से कहते हैं, 'देखो' जो भगवान् की कथा वार्ता में मस्त हो रहे हों, उनसे दूर रहना, मैं तो औरों को ही दण्ड दे सकता हूँ, भगवत् भक्तों को नहीं ॥ ६।९९ ॥ (संसार के कुपथ में जाने वालों को उद्बुद्ध करते हुए सूतजी ने कहा)—

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः,

क्षणार्धं क्षेमार्थं पिवत शुकगाथातुल सुधाम् ।

किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सित कथे,

परीक्षित् साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्ति कथने ॥

इति च परम गुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं,

सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।

जगति शुक कथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्,

पिव परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥

अर्थात्—इस असार संसार में विषय रूप विष के कारण व्याकुल लोगों ? आधे क्षण के लिये ही इस भागवत् 'कथा' रूप अनुपम सुधा का पान करो इससे तुम्हें पूरी शान्ति मिलेगी। तुम अन्य कुत्सित् कथाओं से युक्त कुमार्ग में व्यर्थ ही क्यों भटकते हो। इस कथा के

कान में पड़ते ही मुक्ति हो जाती है, इस विषय में राजा परीक्षित प्रमाण हैं। श्री शुकदेवजी ने प्रेम रस के प्रवाह में स्थित हो कर इस 'कथा' को कहा था। जिसके कण्ठ में इसका सम्बन्ध हो जाता है, वह बैकुण्ठ का मालिक बन जाता है। यह परम गुप्त रहस्य मैंने सुनाया है, सब शास्त्रों के सिद्धान्त का निचोड़ है, संसार में भागवत् 'कथा' से अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है। अतः आप लोग, हे मुनियों ! परमानन्द की प्राप्ति के लिये इस द्वादश स्कन्ध रूप सार सर्वस्व का पान करें॥ भा० मा० १००।१०२॥ (भगवान् की कथा श्रवण के प्रसङ्ग में नारदजी ने वेद व्यास जी से कहा है) कि हे मुने ! मैं पूर्व जन्म में एक वेद वादी ब्राह्मण के दासी पुत्र था भगवान् की 'कथा' श्रवण और सत्संग के प्रभाव से मेरा सुधार हो गया। प्रतिदिन मैं महात्माओं की सेवा किया करता था उनका जूठा खाया करता था कथा श्रवण करता था इस कारण मेरा जन्म जन्मान्तर का पाप नष्ट हो गया, और मेरी भी उनके धर्मों में (भागवत् के धर्मों में) रुचि हो गयी॥

तत्रान्वहं कृष्ण 'कथाः' प्रगायता, मनुग्रेहणाश्रृणवं मनोहराः।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः, प्रियश्रवस्याङ्ग ममाभवद्रुचिः॥
॥ भा० १।५।२६।

को नाम तृप्येद् रसवित्कथायां, महत्तमैकान्तपरायणस्य।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु, योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः॥
॥ १।१८।१४॥

अर्थात्—इस प्रकार उनकी सेवा करते २ मेरा हृदय शुद्ध हो गया, वे लोग जिस प्रकार भजन-पूजा करते थे उसी में मेरी रुचि अत्यधिक हुई। मैं उन्हीं के पास रहकर प्रतिदिन उनकी कृपा से भगवान् की मधुर मनोहर लीला कथायें सुना करता था वे महात्मा लोग, प्रेम से भगवान् की लीला गाया करते थे, मैं श्रद्धा के साथ उसका गान करता था, एक-एक पद श्रवण करता था। इससे जिनकी कीर्ति जिनकी लीला बड़ी प्रेममयी है, उन भगवान् में मेरी श्रद्धा अधिक हुई। अतः भगवान् के प्रेमी भक्तों के क्षण मात्र के संग से स्वर्ग अथवा मोक्ष की तुलना नहीं की जा सकती फिर संसार के तुच्छ भोगों की तो बात ही क्या है। ऐसा कौन रस मर्मज्ञ होगा जो महापुरुषों के एक मात्र जीवन सर्वस्व भगवान् श्री कृष्ण की लीला कथाओं से तृप्त हो जाय। समस्त प्राकृत गुणों से अतीत भगवान् के अचिन्त्य कल्याणकारी गुण गणों से तो ब्रह्मा, शंकर आदि योगेश्वर भी पार नहीं पा सकते॥ (श्री शुकदेव जी कहते हैं—जितने भी उपासक हैं, उनका हित इसी में है कि वे भगवान् के प्रेमी भक्तों का सङ्ग करके भगवान् में अविचल भक्ति (प्रेम) प्राप्त कर लें क्योंकि राजा परीक्षित् के प्रति उन्होंने कहा है) कि—

पिवन्ति ये भगवत आत्मनः सतां,
'कथामृतं' श्रवणपुटकेषु सम्भृताम्।
पुनन्ति ते विषयदूषिताशयं,
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्॥

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्र,
मात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः।
कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः,
कोनिर्वृतो हरि कथासु रतिं न कुर्यात् ॥

हे राजन ! सन्त पुरुष आत्म स्वरूप भगवान् की 'कथा' का मधुर अमृत बांटते ही रहते हैं। जो अपने कानों के दोनों में भर भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदय से विषयों का विषैलापन जाता रहता है, वे शुद्ध हो जाते हैं। और भगवान् श्री कृष्ण के चरणों की सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं ॥ २।२।३७ ॥ और ऐसे महापुरुषों के सत्संग में जो भगवान् की लीला 'कथायें' होती हैं, उनसे संसार सागर की त्रिगुणमयी तरङ्ग मालाओं की थपेड़ें शान्त हो जाते हैं। हृदय शुद्ध होकर आनन्द आने लगता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति नहीं रहती, कैवल्य मोक्ष का सर्व सम्मत मार्ग 'भक्ति' योग प्राप्त हो जाता है। भगवान् की ऐसी रसमयी कथाओं में जिसे चस्का लग गया है, भला कौन ऐसा है जो इसमें प्रेम न करे ॥ २।३।१२ ॥

विदुर जी ने कहा—

ताञ्छोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे, हरेः कथायां विमुखानघेन।
क्षिणोतिदेवोऽनिमिषस्तु येषां, मायुर्वृथा वादगतिस्मतीनाम् ॥
॥ ३।५।१४ ॥

तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
तदधृत्य पुष्पेभ्य इवार्तवन्धो, शिवाय नः कीतर्य तीर्थकीर्तेः ।।
।। ३।५।१५ ।।

कि मुझे तो उन शोचनीय के भी शोचनीय अज्ञानी पुरुषों के लिए निरन्तर खेद होता है, जो अपने पिछले पापों के कारण श्री हरि के 'कथाओं' से विमुख रहते हैं । हाय ! काल भगवान् उनके अमूल्य जीवन को काट रहे है। वे प्राणी, देह और मन को व्यर्थ वाद विवाद, व्यर्थ चेष्टा और चिन्ता में लगाये रहते हैं। हे मैत्रेय ! आप दीनों पर कृपा करने वाले हैं, अतः भौंरा जैसे फूलों से रस निकाल लेता है, उसी प्रकार इन लौकिक कथाओं में से इनकी सारभूता परम कल्याणकारी पवित्र कीर्ति श्री हरि की कथायें छाँट कर हमारे कल्याण के लिए सुनाइये ।। (देवताओं ने परब्रह्म परमात्मा की स्तुति करते हुए कथामृत पान की महिमा गायी है)—

पानेन ते देव कथासुधायाः, प्रबृद्धभक्तया विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्यबोधं, यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ।।
।। ३।५।४५ ।।

तथापरे चात्मसमाधियोग, वलेन जित्वा प्रकृति वलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति, तेषांश्रम स्यान्न तु सेवयाते ते ।।
।। ३।५।४६ ।।

अर्थात्—हे प्रभो ! हे देव ! आपके 'कथामृत' पान करने से बड़ी

हुई भक्ति के कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल हो गया है, वे लोग वैराग्य ही जिसका सार है, ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करके, अनायास ही आपके बैकुण्ठ धाम को चले जाते हैं। और कोई धीर पुरुष चित्त निरोध रूप समाधि के बल से आपकी बलवती माया को जीत कर आप ही में लीन होते हैं, उन्हें श्रम अधिक होता है, किन्तु आपकी 'कथा' श्रवण तथा सेवा में कुछ भी श्रम नहीं होता ।। मैत्रेय जी कहते हैं मैंने श्री हरि का जैसा वर्णन सुना है वैसा ही कहता हूँ।

एकान्त लाभं वचसो नु पुंसां, सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भि रुपाकृतायां, कथासुधायामुपसम्प्रयोगम् ।।
।। ३।६।३७ ।।

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं, सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्ट रोमाभगवत्कथायां, प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ।।
।। ३।१३।५ ।।

अर्थात्—महा पुरुषों का मत है कि पुण्यश्लोक शिरोमणि श्री हरि के गुणों का गान करना ही मनुष्यों की वाणी का तथा विद्वानों के मुख से भगवत् 'कथामृत' का पान करना ही, उनके कानों का सबसे बड़ा लाभ है। ३।६।३७ श्री शुकदेव जी ने कहा हे राजन्! विदुर जी ने सहस्त्र शिर्षा भगवान् श्री हरि के चरणों का ही आश्रय ले रखा था, उन्होंने जब अत्यन्त विनय पूर्वक इस प्रकार कहा और 'कथा' के लिए प्रेरणा की, तब मुनिवर मैत्रेय जी ने 'पुलकित' होकर उसने कहा ३।१३।५ मैं आपकी कौन सी सेवा रूपी कर्म

करूँ जिससे परलोक में हमारा हित हो सके, ऐसा कहकर कथा कहने लगे ।

य एवमेतां हरिमेघसो हरेः, 'कथां' सुभद्रां कथनीयमायिनः ।
श्रृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं, जनार्दनोऽस्याशुहृदि प्रसीदति ।।
।। ३।१३।४८ ।।

को नाम लोके पुरुषार्थ सारवित्, पुरा 'कथानां' भगवत् कथासुधाम् ।
अपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवपहा, महोगिरज्येत विनानरेत्तरम् ।।
।। ३।१३।५० ।।

मैत्रेय जी ने कहा—हे विदुर जी ? भगवान् की लीला चरित्र अत्यन्त कीर्तनीय है और उनमें लगी हुई बुद्धि सब प्रकार के पापों को दूर कर देती है । जो पुरुष उनकी मङ्गलमयी मञ्जुल, 'कथा' को भक्ति भाव से सुनता या सुनाता है, उसके प्रति भक्तवत्सल भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं । और संसार में पशुओं को छोड़कर अपने पुरुषार्थ का सारजानने वाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमन से छुड़ाने वाली भगवान् की प्राचीन कथाओं में से किसी भी अमृत-मयी 'कथा' का अपने कर्ण पुटों से एकवार पान करके फिर उसकी ओर से मनको हटा लेगा ।

निसम्य कौषारविणोपर्वाणतां, हरेः 'कथां' कारणसूकरात्मनः ।
पुनः स पप्रच्छतमुद्यताञ्जलि, न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ।।
।। ३।१४।१ ।।

विदुर उवाच—

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां, सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।
यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादै, र्मतिगृहीता नु हरेः कथायाम् ।।
।। ३।५।१२ ।।

अर्थात्—श्री शुकदेव जी कहते हैं हे राजन् ? पृथ्वी का उद्धार करने के लिए सूकर रूप धारण करने वाले श्री हरि की 'कथा' को मैत्रेय मुनि के मुख से सुनकर भी भक्ति, व्रतधारी विदुर जी को तृप्ति न हुई, अतः उन्होंने हाथ, जोड़कर फिर पूछा । भगवन् आपके सखा मुनिवर कृष्णद्वैपायन ने भी भगवान् के गुणों का वर्णन करने की इच्छा से ही महाभारत रचा है । उसमें भी विषय सुखों का उल्लेख करते हुए मनुष्यों की बुद्धि को भगवान् की कथाओं की ओर लगाने का ही प्रयत्न किया गया है ।। और सनकादि मुनियों ने बैकुण्ठ धाम में भगवान विष्णु से कहा—

नात्यन्तिकंविगणयन्त्यपि ते प्रसादं,
किन्त्वन्य र्दापित भयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्गत्वदंघ्रिशरणाभवतः 'कथायाः',
कीर्तन्यतीर्थ यशसः कुशलारसज्ञाः ।।
।। ३।१५।४८ ।।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यं संविदो, भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि, श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।।
।। ३।२५।२५ ।।

अर्थात्—हे प्रभो ? आपका सुयश अत्यन्त कीर्तनीय और संसारिक दु:खों की निवृत्ति करने वाला है। आपके चरणों की शरण में रहने वाले जो महाभाग आपकी 'कथाओं' के रसिक हैं वे आपके आत्यन्तिक प्रसाद (मोक्ष) पद को भी अधिक नहीं गिनते, फिर जिन्हें आपकी जरा सी टेढ़ी भौंह ही भयभीत कर देती है। उन इन्द्र पद आदि अन्य भोगों के विषय में तो कहना ही क्या है ।। भगवान् कपिल जी ने भी कहा है कि सत्पुरुषों के समागम से मेरे पराक्रमों का यथार्थ ज्ञान कराने वाली तथा हृदय और कानों को प्रिय लगने वाली 'कथाएं' होती हैं। उसका सेवन करने से शीघ्र ही मोक्ष मार्ग में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का क्रमश: विकाश होता है।

अयं त्वत्कथा' मृष्ट पीयूष नद्यां,
मनोवारण: क्लेश दावाग्नि दग्ध: ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं,
ननिष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्न वन्न: ।।
।। ४।७।३५ ।।

त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेस्मिन्,
कृत्वाममाह मिति दुर्मतिरुत्पथै: स्वै: ।
क्षिप्तोप्य सद्विषय लालस आत्म मोहं,
युष्मत्कथामृत निषेवक उद् व्युदस्येत् ।।
।। ४।७।४४ ।।

यज्ञ पुरुष की स्तुति करते हुए सिद्धों ने कहा—हे प्रभो ! नाना कार के क्लेश रूप दावानल से दग्ध हुआ हमारा यह मन रूप हाथी

अत्यन्त तृषित होकर आपकी कथा रूप विशुद्ध अमृतमयी सरिता में घुस कर गोता लगा बैठा है। वहाँ ब्रह्मानन्द में लीन सा हो जाने के कारण उसे न तो संसार रूप दावानल का ही स्मरण है और न वह उस नदी से बाहर ही निकलना चाहता है ।। ४।७।३५ ।। विद्याधरों ने कहा—हे प्रभो परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के साधन रूप इस मानव देह को पाकर भी जीव आपकी माया से मोहित होकर इसमें मैं मेरापन का अभिमान कर लेता है। फिर वह दुर्बुद्धि अपने आत्मीयजनों से तिरस्कृत होने पर भी असत् विषयों की लालसा करता रहता है परन्तु आपके 'कथामृत' के सेवन करने से सभी दोषों से वह इस अन्तः करण के मोह से सर्वथा मुक्त हो जाता है ।। ४।७।३७ ।। इसी प्रकार विद्याधर जी ने भी भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहा है-

यानिर्वृतिस्तनु भृतां तव पाद पद्म,
ध्यानाद्भवज्जन 'कथा' श्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्व महिमन्यपि नाथमाभूत्,
किंत्वान्तकासि लुलितात्पततां विमानात् ।।
।। ४।६।१० ।।

भक्ति मुहु प्रवहतां त्वयि में प्रसङ्गो,
भूयादनन्त महता ममला शयानाम् ।
येनाञ्जसोल्वणमुरु व्यसनं भवाब्धि,
नेष्ये भगवत् गुण 'कथा' मृत पानमत्तः ।।
।। ४।१०।११ ।।

अर्थात्—हे प्रभो आपके चरण कमलों का ध्यान करने से और आपके भक्तजनों के पवित्र 'कथा' (चरित्र) सुनने से प्राणियों को, जो आनन्द मिलता है वह निजानन्द में (ब्रह्म स्वरूप में) नहीं मिल सकता, फिर जिनको काल की तलवार काट डालती है, उन स्वर्गीय विमानों से गिरने वाले पुरुषों को तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है। हे अनन्त परमात्मा ! मुझे तो आप उन विशुद्ध हृदय महात्मा भक्तों का सङ्ग दीजिये जिनका आप में अविच्छिन्न 'भक्ति' भाव है, उनके संग में मैं आपके गुणों और लीलाओं की कथा सुधा को पी पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकार के दुःखों से पूर्ण भयङ्कर संसार सागर को पार कर जाऊँगा ॥

अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः, कलावतारस्य कथामृतादृताः ।
यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः, श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥
॥ ४।१६।३ ॥

अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते, त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।
य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्, ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥
॥ ४।२१।४९ ॥

हे प्रभो ! आपके 'कथामृत' का आस्वादन करने के लोभ से, योगबल से हृदय में किये हुए मुनियों के उपदेश के अनुसार उन्हीं की प्रेरणा से हम आपके परम प्रसंशनीय कर्मों का कुछ विस्तार करना चाहते हैं, आप साक्षात् श्री हरि के कलावतार हैं और आपकी कीर्ति बड़ी उदार है। तथा आपका सुयश बड़ा पवित्र है, उदार कीर्ति

ब्रह्मण्य देव श्री हरि की 'कथाओं' का प्रचार करते हैं। अहा ! हमारा बड़ा सौभाग्य है, आज आपको अपने स्वामी के रूप में पाकर हम अपने को भगवान् के ही राज्य में समझते हैं॥ मैत्रेय जी ने भी कहा है—

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया, जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया।
योगेश्वरोपासनया च नित्यं, पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च।४।२२।२२।
छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीह, स्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन।
तावन्नयोगगतिर्भिर्यतिरप्रपत्तो, यावद्गदाग्रज 'कथासु' रतिं न कुर्यात्॥ ४।२३।१२॥

अर्थात्—शास्त्रों का यह भी कहना है कि गुरु और शास्त्र के वचनों में विश्वास रखने से, भागवत् धर्मो का आचरण करने से, तत्व जिज्ञासा से, ज्ञान योग की निष्ठा से, योगेश्वर श्री हरि की उपासना से, नित्य प्रति पुण्य कीर्ति भगवान् की पावन 'कथाओं' के सुनने से जो लोग धन और इन्द्रियों के भोगों में ही रत हैं उनकी गोष्ठी में प्रेम न रखने से ही भगवान् में प्रेम होता है। तदनन्तर राजा पृथु ने श्रीकृष्ण की अनुभूति होने पर अन्य सब प्रकार की सिद्धि आदि से भी उदासीन हो जाने के कारण उस तत्त्व ज्ञान के लिए प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिसकी सहायता से पहले अपने जीव कोश का नाश किया था, क्योंकि जब तक साधक को योग मार्ग द्वारा श्रीकृष्ण 'कथामृत' में अनुराग नहीं होता, तब तक केवल योग साधना से उसका मोह जनित प्रमाद दूर नहीं होता, भ्रम भी नहीं मिटता॥ अतः नारद जी ने भी राजा प्राचीन वर्हि से कहा है—

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र, पीयूषशेषसरितः परितः श्रवन्ति ।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैं, स्तान्नस्पृशन्त्यशनतृड्भयशोक-मोहाः ॥ ४।२९।४० ॥

इमां तु कौषारविणोपर्वाणितां, क्षत्तानिशम्याजितवाद सत्कथाम् ।
प्रवृद्धभावोऽश्रूकलाकुलोमुने, दंधारमूर्ध्ना चरणं हृदाहरेः ४।३१।२८

अर्थात्—हे राजन् ? जहां भगवत् गुणों को सुनने सुनाने में तत्पर विशुद्ध चित्त भक्त जन रहते हैं, उस साधु समाज में सब ओर महा-पुरुषों के मुखों से निकले हुए श्री मधुसूदन भगवान् के चरित्र रूप शुद्ध 'कथामृत' की अनेकों नदियां चारों ओर बहती रहती है, जो लोग अतृप्त चित्त से श्रवण में तत्पर अपने, कर्ण कुहरों द्वारा उस अमृत का छककर पान करते हैं उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक और मोह आदि कुछ भी बाधा नहीं पहुंचा सकते। हे राजन् ? श्री मैत्रेय जी के मुख से यह भगवत् गुणानुवाद युक्त पवित्र 'कथा' सुनकर विदुर जी प्रेम मग्न हो गये। भक्ति भाव का उद्रेक होने से उनके नेत्रों से पवित्र आंसुओं की धारा बहने लगीं, तथा उन्होंने हृदय में भगवच्चरणों का स्मरण करते हुए अपना मस्तक मुनिवर मैत्रेय जी के चरणों में रख दिया ॥ इसी प्रकार श्रीऋषभदेव जी ने भी अपने भरत आदि सौ पुत्रों को उपदेश देते हुए कहा हे पुत्रों—

मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं, मद्देवसङ्गाद्गुणकीर्तनान्मे ।
निर्वैर साम्योपसमेन पुत्रा, जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ५।५।११ ॥

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा, न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः, सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥
५।१६।२४ ॥

अर्थात्—जीव को सभी योनियों में दुःख ही उठाना पड़ता है, इस विचार से तत्त्व जिज्ञासा से तपस्या से सकाम कर्मत्याग से मेरे लिए हीं कर्म करने से मेरी 'कथाओं' का नित्य प्रति श्रवण करने से मेरे भक्तों के संग और मेरे गुणों के चिन्तन से संसार से उद्धार हो जाता है ॥ देवताओं ने भी कहा है कि जहाँ भगवान् की 'कथा' की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ उनके उद्गम स्थान भगवत् भक्त साधु जन निवास नहीं करते, और जहाँ नृत्य गीतादिके साथ बड़े समारोह से भगवान् यज्ञ पुरुष की पूजा (अर्चा) नहीं की जाती वह चाहे ब्रह्म लोक तथा इन्द्रलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये अर्थात् वहाँ नहीं रहना चाहिये ॥ श्री भक्तवर प्रहलाद जी भी भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कहते हैं—

तत् तेऽर्हत्तमनमःस्तुतिकर्मपूजाः, कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं 'कथायाम्'।
संसेवयात्वयि विनेति षडङ्गया किं, 'भक्ति' जनःपरमहंस गतौलभेत
॥ ७।९।५० ॥

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः पर देवताया, लीलाकथास्तव नृसिंहविरिञ्च गीताः।

अङ्गस्तितम्यंनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो, दुर्गाणिते पदयुगालयहंससङ्गः
॥ ७।६।१८ ॥

अर्थात् हे परम पूज्य प्रभो ! आपकी सेवा के अङ्ग हैं नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण कमलों का चिन्तन तथा लीला 'कथा' का श्रवण, इस सेवा के बिना आपके चरण कमलों की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? और भक्ति के बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी ? प्रभो आप तो अपने परम प्रिय भक्त जनों के 'परमहंस' के ही सर्वस्व हैं ॥ हे प्रभो ! मैं ब्रह्माजी के द्वारा गायी हुई आपकी लीला 'कथाओं' का गान करता हुआ बड़ी सुगमता से रागादि प्राकृत गुणों से मुक्त होकर इस संसार की कठिनाइयों को पार कर जाऊँगा। क्योंकि आपके चरण युगलों में रहने वाले भक्त परमहंस महात्माओं का संग तो मुझे मिलता ही रहेगा ॥

'कथा' मदीया जुषमाण प्रियास्त्व, मावेश्यमामत्मनि सन्तमेकम् ।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं, यजस्वयोगेन च कर्मंहिन्वन् ॥ ७।१०।१२ ॥
भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं, कलेवरं कालजवेन हित्वा ।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां, विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥
७।१०।१३ ॥

अर्थात् - नृसिंह भगवान् ने प्रहलाद जी से कहा तूँ राज्य करो भवबन्धन से मत डरो, भला समस्त प्राणियों के हृदय में यज्ञों के भोक्ता ईश्वर के रूप में मैं ही विराजमान हूँ। तुम अपने हृदय में

मुझको देखते रहना। मेरी लीला 'कथाएँ' जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय है, सुनते रहना। समस्त कर्मों के द्वारा मेरी ही आराधना करना। इस प्रकार अपने प्रारब्ध कर्म का क्षय कर देना, भोगों के द्वारा पुण्य कर्मोंका फल भोगना और पुण्य कर्मों के द्वारा पाप का नाश करते हुए समय पर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनों से मुक्त होकर मेरे पास आ जाओगे ॥ (सूनजी कहते हैं कि राजा परीक्षित ने गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनने की जिज्ञासा प्रकट की तव उत्तर देते हुये शुकदेव जी ने कहा—

परीक्षितैवं स तु वादरायणिः,
प्रायोपविष्टेन 'कथा'सु चोदितः।
उवाचविप्राः प्रतिनन्द्यपार्थिवं,
मुदामुनीनां सदसि स्म श्रृण्वताम् ॥ ८।१।३३ ॥

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनु श्रृण्वतो,
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित्।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं,
समस्तसंसार परिश्रमापहम् ॥ ८।१२।४६ ॥

अर्थात्—राजा परीक्षित आमरण अनशन करके 'कथा' सुनने के लिये ही बैठे हुए थे उन्होंने जब श्री शुकदेव जी महराज से इस प्रकार कथा कहने के लिए प्रेरित किया, तब वे बड़े आनन्दित हुए और परीक्षित् का अभिनन्दन करके मुनियों की भरी सभा में गजेन्द्र मुक्ति की कथा कहीं। और उन्होंने कहा जो भगवान् की कथा का

कीर्तन और श्रवण करता है, उसका उद्योग कभी और कहीं निष्फल नहीं होता। क्योंकि पवित्र कीर्ति भगवान् के गुण और लीलाओं का गान संसार के समस्त क्लेश और परिश्रमों को मिटा देने वाला है ॥

(श्री शुकदेव जी ने राजा अम्बरीष की भक्ति निष्ठा का वर्णन करते हुए कहा)—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो,
वंचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौहरेर्मन्दिरमार्जनादिषु,
श्रुतिं चकाराच्युत 'सत्कथोदये' ॥ ९।४।१८ ॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे,
शिरोहृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया,
यथोत्तमश्लोकजनाश्रयेरतिः ॥ ९।४।२० ॥

अर्थात्—वे मन से सदा सर्वदा भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण करते रहते थे। उनकी वाणी भगवान् श्री कृष्ण के गुण और लीला के वर्णन में ही नित्य रस लेती रहती, वे अपने हाथों से भगवान् के मन्दिर झारते, बुहारते, धोते और सजाते रहते। जब देखिये उनके कान भगवान् की मधुर मंगलमयी लीला 'कथा' के श्रवण में ही लगे रहते। राजा अम्बरीष के पैर भगवान् के तीर्थ (क्षेत्र) में पैदल यात्रा करने में ही लगे रहते और वे शिर से भगवान् कृष्ण के चरण कमलों की वन्दना किया करते, राजा ने माला

चन्दनादि भोग सामग्रियों को भगवान् के चरण कमलों में समर्पित कर दिया था ।। (कुबेर के दो लड़के भगवान् की स्तुति करते हुए बोले)-

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां,
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे,
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तुभवत्तनूनाम् ।।
।। १०।१०।३८ ।।

तव कथामृतं तप्तजीवनं,
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं,
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।
।। १०।३१।६ ।।

अर्थात्--हे प्रभो ! हमारी वाणी आपके मंगलमय गुणों का वर्णन करती रहे । हमारे कान आपकी रसमयी कथायें सुनने में लगे रहें । हमारा हाथ आपकी सेवा में और मन आपके चरण कमलों की स्मृति में रम जाय । हमारा मस्तक सबके सामने झुका करे, हमारी दृष्टि सन्तों का दर्शन करती रहे ।। और भी कहा है-जिस वक्त रास लीला चल रही थी उसमें गोपिकाओं को अभिमान हो गया, भगवान् हमारे वस में हैं । गोपियों का यह भाव जान कर भगवान् श्री कृष्ण तुरन्त अन्तर्धान हो गये । गोपियों ने भगवान् को बहुत ढूँढ़ा पर कहीं नहीं पाया । वे यमुना के किनारे इकट्ठी हुईं और स्तुति करने लगी उन्होंने

कहा हे प्रभो ! तुम्हारी 'कथामृत' संसार के ताप से तपे हुए प्राणियों के लिए जीवन दान देती है, और बड़े बड़े महात्माओं भक्तों कवियों ने भी गान किया है। सुनने मात्र से ही परम मंगल तथा परम कल्याण प्रदान करती है। वह 'कथामृत' परम सुन्दर परम मधुर, और विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला 'कथा' का गान करते हैं वे वास्तव में भू लोक में सबसे बड़े दाता हैं, लक्ष्मी से पूर्ण हैं ॥ भगवान् श्री कृष्ण की आज्ञा से उद्धव जी उनका सन्देश लेकर ब्रज में गोपियों को सान्त्वना देने के लिये गये, वहां पर गोपियों की श्री कृष्ण में अद्भुत प्रेम की निष्ठा देखकर भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहने लगे।

एतःपरं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो,
गोविन्द एव निखिलात्मनिरूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च,
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥
॥ १०।४७।५८ ॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः,
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडाल भृत्याः।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्,
युष्मत्कथा मृडविरञ्चिसभासुगीता ॥
॥ १०।६०।४४ ॥

अर्थात्— इस पृथ्वी में केवल इन गोपियों का ही शरीर धारण

करना सफल है, क्योंकि सर्वात्मा भगवान् श्री कृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गई है। प्रेम की यह ऊँची से ऊँची स्थिति संसार के भय से भी मुमुक्षु जनों के लिए ही नहीं, अपितु बड़े बड़े मुनियों भक्त पुरुषों तथा हम भक्त जनों के लिए भी वाञ्छनीय हैं क्योंकि हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है जिन्हें भगवान् श्री कृष्ण की लीला 'कथा' के रस का चस्का लग गया है, उन्हें कुलीनता, द्विजाति होने की क्या आवश्यकता है। अथवा यदि भगवान् की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई तो अनेकों महाकल्पों तक बार बार ब्रह्मा होने से ही क्या लाभ है ॥ उसी प्रकार श्री कृष्ण भगवान् से रुक्मणी जी ने कहा, हे अच्युत ? हे शत्रु दमन, गधों के समान घर का बोझा ढोने वाले बैलों के समान गृहस्थी के व्यापारों में जुते रहकर कष्ट उठाने वाले, कुत्ते के समान तिरस्कार सहने वाले, शिशुपाल आदि राजा लोग, जिनको वरण करने के लिए आपने मुझे संकेत किया है—उसी अभागिनी स्त्री के पति हों--जिनके कानों में भगवान् शंकर, ब्रह्मा तथा आपकी लीला कथा ने प्रवेश नहीं किया ॥ भगवान् श्री कृष्ण के सखा श्री सुदामा जी बोले—

सावाग्यया तस्य गुणान् गृणीते, करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजंगमेषु, श्रृणोति तत्पुण्य 'कथाः' सकर्णः ॥

॥ १०।८०।३ ॥

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जने, ष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।

समेत्य गोविन्दकथामिथोऽगृणं, स्त्रिलोकगीताः श्रृणुवर्णयामिते ॥
॥ १०।८३।३ ॥

अर्थात्—जो वाणी भगवान् के गुणों का गान करती है, वही सार्थक है, जो चराचर प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् का स्मरण करता है वही मन है। वास्तव में कान वही हैं, जो भगवान् की पुण्यमयी 'कथाओं' का श्रवण करते हैं ॥ श्री शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा जिस समय कौरव लोग वार्तालाप कर रहे थे उसी समय यदु कुल तथा कौरव कुल की स्त्रियां भी एकत्र होकर 'भगवत्कथा' जो तीनों लोक में गायी जाने वाली है उसे गा रही थी वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ (और भी) जव मनुष्य प्रति क्षण भगवान् श्री कृष्ण की मनोहारिणी लीला कथाओं का अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान् के परमधाम में पहुंचा देती है। यद्यपि काल से पार जाना बहुत कठिन है परन्तु भगवान् की कथाओं में काल की दाल नहीं गलती। उसी धाम की प्राप्ति के लिए अनेक सम्राटों ने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करने के उद्देश्य से वन की यात्रा की है। इसलिए मनुष्यों को उनकी 'कथा' लीला का ही श्रवण करना चाहिये ॥ इसी प्रकार देवताओं ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा—

विस्व्यस्तवामृत कथोदवहास्त्रिलोक्याः,
पादावनेजसरितः समलानि हन्तुम्।
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिव्रज मङ्गसङ्गैः,
स्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥
॥ ११।६।१९ ॥

'कथा' इमास्ते कथिता महीयसां, वितायलोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो, वचोविभूतीर्नतु पारमार्थ्यम् ॥
॥ १२।३।१४ ॥

अर्थात्—हे विभो ! आपने त्रिलोकि के पाप राशी के धोने के लिए दो प्रकार की पवित्र नदियां वहा रक्खी है, एक तो आपकी अमृत मयी लीलाओं से भरी 'कथा' नदी और दूसरी आपके पाद प्रक्षालन के जल से भरी गंगा जी, अतः सत्सङ्ग सेवी विवेकी जन कानों के द्वारा आपकी 'कथा' नदी में, और शरीर के द्वारा गंगाजी में गोता लगाकर दोनों ही तीर्थ का सेवन् करते हैं और अपने पाप और ताप मिटा देते हैं। श्री शुकदेव जी ने कहा हे? परिक्षत् संसार में बहुत से महान पुरुष हो गये हैं, जो सम्पूर्ण लोक में अपने यश का विस्तार करके यहाँ से चल बसे, उनकी 'कथायें' तुम्हें ज्ञान वैराग्य का उपदेश करने के लिए कही गयी हैं। इन्हें वाणी का वैभव मात्र या वाणी का विलास मात्र न समझो इनमें परमार्थ तत्त्व भरा हुआ है ॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु, र्नारायणस्याखिलसत्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः, कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥
॥ १२।४।३९ ॥

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो,
नान्यःप्लवोभगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीला 'कथा' रसनिषेवण मन्तरेण,
पुंसो भवेद् विविध दुःखदवार्दि तस्य ॥
॥ १२।४।४० ॥

अर्थात्—श्री शुकदेव जी ने कहा हे परीक्षित ! विश्व विधाता भगवान् समस्त प्राणियों और शक्तियों के आश्रय हैं। जो कुछ मैंने संक्षेप में कहा है, वह सब उन्हीं की लीला 'कथायें' हैं। भगवान् की लीला 'कथाओं' का पूर्ण वर्णन तो स्वयं ब्रह्मा जी भी नहीं कर सकते ।। हे राजन् जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार से पार जाना चाहते हैं। अथवा जो लोग अनेकों प्रकार के दुःख दावानल से दग्ध हो रहे हैं उनके लिए भगवान् पुरुषोत्तम की लीला 'कथा' रूप, रस के सेवन के अतिरिक्त और कोई साधन (कोई नौका) नहीं है। वे केवल लीला रसायन का सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं। भगवान् श्री कृष्ण का गुणानुवाद 'कथा' समस्त अमङ्गलों का नाश करने वाला है, बड़े बड़े महात्मा उसी का गान करते रहते हैं। सचमुच उसको बार बार गाते रहना ही परम मंगल है। जो भगवान् श्री कृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेम मयी भक्ति की लालसा रखता हो, उसे तो नित्य निरन्तर भगवान् के दिव्य कथामृत का पान करना चाहिये ।। श्री सूत जी ने कहा—

कलिमल संहृतिकालनोऽखिलेशो, हरिरितरत्र न गीयतेह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः, परिपठितोऽनुपदं 'कथा' प्रसङ्गैः ॥
॥ १२।१२।६५ ॥

श्री सच्चिदानन्द घनस्वरूपिणे, कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थान निरोधहेतवे, नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेनिऽशम् ॥
॥ भा० मा० १ ॥

अर्थात्—हे मुनीश्वरों ! भगवान् ही सबके स्वामी हैं और समूह

के समूह कलिमलों को विध्वंस करने वाले हैं। यों तो उनका वर्णन करने के लिए बहुत से पुराण हैं, परन्तु उनमें सर्वत्र और निरन्तर भगवान् का वर्णन नहीं है। किन्तु श्री मद्भागवत् महापुराण में तो प्रत्येक 'कथा' प्रसङ्गों में और पद पद पर सर्व स्वरूप भगवान् का ही वर्णन हुआ है। श्री व्यास जी ने कहा—जिनका स्वरूप सच्चिदानन्द घन है, जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यादि गुणों से सबका मन अपने ओर आकर्षित कर लेते हैं और सदा सर्वदा अनन्त सुख की वर्षा करते रहते हैं। जिनकी ही शक्ति से इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं उन भगवान् श्री कृष्ण को हम भक्ति रस का आस्वादन करने के लिए नित्य निरन्तर प्रणाम करते हैं।। इसी प्रकार से शनकादि मुनीश्वरों ने नारद जी से कहा—

"वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा। अत्युत्तमा ततो भाति पृथक् भूता फलाकृतिः ।। २।६७ ।। इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम् । भक्तिज्ञानविरागणां स्थापनाय प्रकाशितम् ।। २।७१ ।। वेदवेदान्त सुस्नाते गीताया अपिकर्तरि। परितापवति व्यासे मुह्यत्य ज्ञानं सागरे ।। तावत् संसार चक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् । यावत् कर्णगता नास्ति शुक शास्त्रकथा क्षणम् ।। कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यत् गृहे। तद् गृहं तीर्थं रूपं हि वसतां पाप नाशनम् ।। सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा। यस्याः, श्रवण मात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ।। अश्वमेध सहस्त्राणि वाजपेय शतानिच। शुक शास्त्र 'कथा' याश्च कलां नार्हन्तिषोऽशीम् ।। तावत् पापानि देहेऽस्मिन्

निवसन्ति तपोधना: । यावन्त श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरै: ।। दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा । कोटि जन्म समुत्थेन पुण्यै नैव तु लभ्यते ।। ३।४४ ।। अन्त कालेतुयेनैव श्रूयते शुक शास्त्र वाक् । प्रीत्या तस्यैव वैकुंठ गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ।। अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरीभिर्देवसंसदि । अकथा श्रविणां पुंसा निष्फलं जन्म कीर्तितम् ।। सप्ताह श्रवणांल्लोकं प्राप्यते निकटे हरि: । अतोदोष निवृत्यर्थं एतदेवहि साधनम् ।। ५।६२ ।। भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संसया: । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताह प्रवणे कृते ।। कलौ भागवती वार्ता भव रोग विनाशिनी । स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रस: ।। अत: पिवन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चतर्किहिचत् ।। धर्म: स्वनिष्ठित: पुसां विष्वक्सेन कथासु य: । नोत्पादयेद्यतिर्रतिश्रमएव हि केवलम् ।। यदनुध्यासिन: युक्ता: कर्म ग्रन्थि निवन्धनम् । छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथा रतिम् ।। श्रृण्वतां स्वकथां कृष्ण पुण्य श्रवण कीर्तन: । हृद्यन्त: स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृद् सताम् ।। देवदत्त मिमां वीणां स्वर ब्रह्म विभूषिताम् । मूर्च्छयित्वा हरि कथा गायमानश्चराम्यहम्।।" १।६।३३।

अर्थात् सनकादिक ने कहा—श्री मद्भगवत् की कथा वेद और उपनिषदों के सार से बनी है। इसलिए उनसे अलग उनकी फल रूपा होने के कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती है। यह भागवत् पुराण वेदों के समान माना गया है, श्री व्यासदेव ने इसे भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य की स्थापना के लिए प्रकाशित किया है। पूर्वकाल में

वेद वेदान्त के पारगामी और गीता की रचना करने वाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञान के समुद्र में गोता खा रहे थे, उस समय आप ही ने उन्हें चार श्लोकों में उपदेश किया था। यह जीव तभी तक अज्ञान वस संसार चक्र में भटकता है, जब तक क्षण भर के लिए भी कानों में शुक शास्त्र की 'कथा' नहीं पड़ती है। जिस घर में श्री मद्भागवत् की कथा नित्य प्रति होती है, वह घर तीर्थ रूप हो जाता है। और जो लोग उसमें रहते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्री मद्भागवत् की 'कथा' सदा ही सेवन करना चाहिये इसके सुनने मात्र से ही श्री हरि हृदय में आ विराजते हैं। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस भागवत् 'कथा' का सोलहवां अंश भी नहीं हो सकते। हे तपों धनों! जब तक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवत् का श्रवण नहीं करते तभी तक उनके शरीर में पाप टिकते हैं ॥३।३१॥ संसार में श्रीमद्भागवत् की कथा का मिलना अवश्य कठिन है, जब करोड़ों जन्मों का पुण्य उदय होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है ॥ ३।४४॥ जो पुरुष अन्त समय में श्री मद्भागवत् का वाक्य सुन लेते हैं, उन पर भगवान् प्रसन्न होकर उसे वैकुण्ठ धाम दे डालते हैं। जो पुरुष सोने के सिंहासन पर रख कर विष्णु भक्तों को भागवत् का दान करता है, वह अवश्य भगवान् का सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥३।४०॥ विद्वानों ने देवताओं की सभा में कहा है कि जो पुरुष इस भारतवर्ष में श्रीमद्भागवत् की कथा नहीं सुनते उनका जन्म व्यर्थ है ॥५।५६॥ इस लोक में सप्ताह श्रवण

करने से भगवान् की शीघ्र प्राप्ति हो सकती है। अतः सब प्रकार के दोषों से निवृत्त होने के लिए एक मात्र यही साधन है ।।५।६२ ।। सप्ताह श्रवण से मनुष्य के हृदय की गांठ (अज्ञान) खुल जाती है, अर्थात् उसकी देहात्म बुद्धि सदा के लिये दूर हो जाती हैं। उसके सब संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ।५।६५। कलियुग में भागवत् की 'कथा' भव रोग (जन्म मरणादि को) नाश करने वाली है। यह रस स्वर्ग में, सत्यलोक में कैलास और वैकुण्ठ में भी नहीं है, इसलिये भाग्यवान श्रोताओं ! तुम इसका पान करो, इसे किसी प्रकार भी छोड़ो मत ।। ६।८३ ।। धर्म का ठीक ठीक अनुष्ठान करने पर भी यदि मनुष्य के हृदय में भगवान् की लीला 'कथाओं' के प्रति अनुराग का उदय न हो तो समझो कि केवल श्रम ही श्रम है ।।१।२।८ ।। कर्मों की गांठ बड़ी कड़ी है। विचार वान् पुरुष भगवान् के चिन्तन की तलवार से उस गांठ को काट डालतें हैं तब भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो भगवान् के चिन्तन को जगाने वाली 'कथा' में प्रेम न करे। हे मुनीयों ! यदि श्रद्धा पूर्वक 'कथा' सुनने की इच्छा से पवित्र तीर्थ और आश्रमों में रहे और महापुरुषों की सेवा करे तो भगवान् श्री कृष्ण 'कथा' में रुचि और प्रीति हो जाती है। भगवान् के स्वरूप, गुण, लीला नाम और धाम का श्रवण कीर्तन अत्यन्त पवित्र है। जो उनकी 'कथा' श्रवण करता है, उसके हृदय में वे प्रभु आकर बैठ जाते है ।१२।१६, १७ मेरी यह 'वीणा' भगवान की दी हुई है। यह स्वर ब्रह्म से विभूषित है।

इस पर भगवान् की लीलाओं का मैं गान करता रहता हूँ। और संसार में विचरता हूँ। जिन लोगों का चित्त बार-बार विषयों में आतुर हो रहा है उनके लिये भगवान् की लीलाओं का यह कीर्तन संसार सागर से पार जाने के लिये दृढ़ नौका के समान है।

इस प्रकार से कृष्ण कथा श्रवण की महिमा बताई गयी है।

टिप्पणी—श्री गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी अपनी लोकप्रिय भाषा में राम की कथा लिखि है उनकी रचना के कुछ चौपाईयाँ इस प्रकार है राम कथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ानहारी। हरिहर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की। राम कथा के ते अधिकारी। जिन्हके सत्संगति अति प्यारी; संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहि श्रुति सूरी। मन क्रम वचन जनित अघ जाई। सुनहि जे कथा श्रवन मन लाई। रामचरित जे सुनत अघाहिं। रस विशेष जाने तिन्ह नाहि। जीवन मुक्त महा-मुनी जेऊ। हरि गुण सुनहिं निरन्तर तेऊ। भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकह दृढ़ नावा। विमल कथा हरि पद दायिनी। भगति होई सुनि अन पायिनी। रामकथा मुनिवर बहुवरनी। ज्ञानपयोनिधि पावक जिमि अरनी। खगपति राम कथा मै बरनी। स्वमति विलास त्रास दुःख हरनी, बिरति विवेक भगति दृढ़ करनी। मोहनदी कहँ सुन्दर तरनी। पावन पर्वत बेद पुरान। राम कथा रुचिराकर नाना। जिन्ह हरिहर कथा सुनी नहीं काना। श्रवण रन्ध्र अहि भवन समाना (इत्यादि)।

श्री भगवन्नाम महिमा

(मङ्गलम्) स्थिता वामभागे भवानी सुशीला,
स्थितोदक्षिणाङ्के गणेशः सुपुत्रः ।
स्थितरग्रतो धर्मरूपो वृषश्च
स्थितं शंकरं तं समासीनमीडे ॥

नाम की महिमा बताते हुए 'यम' ने अपने दूतों से कहा—पापी से पापी जीव भी एकवार के नाम उच्चारण मात्र से मृत्युमयी फांसी से छुटकारा पा गया । सबसे बड़ा 'प्रायश्चित' नाम संकीर्तन ही है ।"

हे दुतो ! तुम लोगों ने अभी देखा ही है अजामिल कैसा पापी था जीवन भर नहीं केवल मरणासन्न काल में, सो भी भगवान् का नाम जानकर नहीं अपने पुत्र को सम्बोधन करने के लिए 'नारायण' नाम का उच्चारण मात्र किया था तो भी वह समस्त पापों से मुक्त हो गया । (शरणागत भय मञ्जन शार्ङ्गपाणि श्री हरि तुम्हारे शत्रुओं का संहार करें) भगवान् का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्तन करने मात्र से मनुष्य दुस्तर मृत्यु के मुख से अनायास ही वच जाता है। इसलिए श्री धर्मराज ने दूतों से पुनः कहा—

निजकी जिह्वा भगवान् के गुणों और नामों का उच्चारण नहीं करती और जिनका चित्त उनके चरणारबिन्दों का चिन्तन

नहीं करता, जिनका शिर एक बार भी भगवान् श्री कृष्ण के चरणों में नहीं झुकता, उन भगवत् सेवा विमुख पापियों को ही मेरे पास लाया करो। फिर भी कहते हैं—

जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नट के संकल्प और वचनों से की हुई 'करामात' को नहीं समझते, वैसे ही अपने संकल्प और वेद वाणी के द्वारा भगवान् प्रकट किए हुए इन अनेक नाम और रूपों को तथा उनकी लीला को कुबुद्धि जीव वहुत सी तर्क युक्ति के द्वारा नहीं पहचान सकता ।। १।३।३७ ।।

बड़े बड़े ब्रह्मवादी ऋषियों ने पापों के बहुत से प्रायश्चित्त कृच्छ्र चन्द्रायण आदि व्रत वतलाये हैं; परन्तु उन प्रायश्चित्तों से पापों की वैसी जड़ से शुद्धि नहीं होती है, जैसे भगवान् के नामों का (उनसे गुम्फित पदों का) उच्चारण करने से होती है। श्री शुकदेव जी ने कहा—हे राजन् ! तुम सुन चुके हो कि अजमिल ने दासी का सहवास करके अपना धर्म कर्म नष्ट कर दिया था। वह अपने निन्दित कर्म के कारण पतित हो गया था नियमों से च्युत होने के कारण उसे नरक में गिराया जा रहा था। परन्तु भगवान् का एक बार नामोच्चारण करने मात्र से वह मुक्त हो गया।। इसी प्रकार नारद जी ने भी नाम का महत्व बताया है और कहा है कि— जब से मैंने भगन्नाम महिमा को जाना।

तब से लज्जा छोड़ कर भगवान् के अत्यन्त रहस्यमय, मङ्गलमय सुमधुर नामों तथा लीलाओं का कीर्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा

और मद-मत्सर मेरे हृदय से पहले से ही निवृत्त हो चुके थे। अब मैं आनन्द के साथ काल की प्रतिक्षा करता हुआ पृथ्वी पर विचरने लगा। इत्यादि। इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नही है, और दूषित शब्दों से युक्त भी है, किन्तु भगवान् के नाम तथा सुयश अंकित हों, तो वही वाणी लोगों के सारे पापों का नाश करने वाली है—सत्पुरुष ऐसी ही वाणी का श्रवण, गान और कीर्तन करते हैं।

शौनक मुनि ने श्री सूत जी से कहा—वह हृदय नहीं है, वज्र है, जो भगवान् के मंङ्गलमय नामों का श्रवण, कीर्तन करने पर भी पिघलकर उन्हीं की ओर बह नहीं जाता। जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस समय नेत्रों में आँसू छलकने लगते हैं। और शरीर का रोम रोम खिल उठता है पुलकित हो जाता है। जो लोग प्राण त्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मों को सूचित करने वाले देवकी सुत, जमार्दन, कंसनिकन्दन आदि नामों को विवस होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मों के पापों से तत्काल छूट कर मायादि के आवरणों से रहित ब्रह्म पद प्राप्त करते हैं॥ माता देवहूति जी ने भी कहा—

अहो जिसकी जिह्वा पर आपका पवित्र 'नाम' रहता है। वह चाण्डाल इसलिए (नाम लेने के कारण ही) श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान् पुरुष आपका 'नाम' उच्चारण करते हैं उन्होंने तप, हवन तीर्थ, स्नान, सदाचार का पालन और वेदाध्ययन सब कुछ कर

लिया। क्योंकि इन सबका परम फल है, उन्हें नामोच्चारण से ही मिल जायगा। इसलिए आपके गुण, जन्म और कर्म आदि के द्वारा आपके नाम तथा रूप का निरूपण नहीं किया जा सकता। फिर भी हे प्रभो ! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियाओं के द्वारा आपका साक्षात्कार करते ही हैं। जो लोग मंगलमय रूपों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करते हैं फिर जन्म मृत्यु रूप संसार के चक्र में नहीं पड़ते ॥

मनुष्य मरने के समय आतुरता की स्थिति में अथवा गिरते फिसलते विवस होकर भी यदि भगवान् के किसी एक नाम का उच्चारण कर लेता है, उसके सारे कर्म बन्धन छिन्न भिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। परन्तु हाय ! कलियुग तुम से प्रभावित होकर लोग नाम भी नहीं लेते। भगवान् आपकी आराधना द्वारा आपके 'नाम' रूप का निरुपण नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रभो ! आपके भक्त जन उपासना आदि क्रियाओं के द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं। जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और रूपो का श्रवण, कीर्तन स्मरण और ध्यान करते हैं—उन्हें फिर जन्म मृत्यु रूप संसार के चक्कर में नहीं आना पड़ता ॥

इस पृथ्वी तल में भगवान् के जन्म और लीला की बहुत सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिए। उन लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले भगवान् के बहुत से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लज्जा और संकोच छोड़ कर उनका गान करते

रहना चाहिये। हे राजन्! कलियुग यों तो दोषों का खजाना है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुग में केवल भगवान् श्री कृष्ण का नाम संकीर्तन करने मात्र से ही सारी आसक्तियां छूट जाती हैं। और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सतयुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेता में बड़े बड़े यज्ञों द्वारा उनकी आराधना करने से, और द्वापर में विधि पूर्वक उनकी पूजा-सेवा से जो फल मिलता है वह कलियुग में केवल भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है॥

हे परीक्षित्! भगवान् ही तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले हैं। जो लोग इस संसार बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये भगवन्नाम से बढ़ कर और कोई साधन नहीं है, क्योंकि नाम का आश्रय लेने से मनुष्य का मन फिर कर्म के पचड़े में नहीं पड़ता। भगवन्नाम के अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्त का आश्रय लेने पर मन रजोगुण और तमोगुण से ग्रस्त ही रहता है तथा पापों का पूरा-पूरा नाश भी नहीं होता॥ जिनके सुने सुनाये 'नाम का' कोई दीन या पापी पुरुष आकस्मात् अथवा हँसी में भी उच्चारण कर लेता है तो वह पुरुष दूसरे मनुष्यों के भी सारे पापों को तत्काल नष्ट कर देता है—ऐसे अनन्त भगवान् को छोड़ कर मोक्ष की इच्छा रखने वाला पुरुष और किसका आश्रय ले सकता है॥ जिन भगवान् के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान् के चरणों में आत्म समर्पण, उनके चरणों में प्रीति, सर्वदा के लिए सब प्रकार

के दुःखों को शान्त कर देता है। उन्हीं परम तत्त्वस्वरूप श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥

जो मनुष्य गिरते, पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते, अथवा छींकते समय विवसता से भी उच्च स्वर से बोल उठता है—हरये नमः, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। भगवन्नाम महिमा का वर्णन करके कोई भी व्यक्ति पार नहीं पा सकता। अनेकों महापुरुषों ने अपनी-अपनी मति के अनुसार वर्णन किया है ॥

श्री वराह भगवान् पृथ्वी से कहते हैं—हे देवी !

पेयं पेयं श्रवण पुटके रामनामाभिधानं
ध्येयं ध्येय मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।
जल्पन् जल्पन् प्रकृति विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्य ामटति जटिलो कोऽपिकाशीनिवासी ।

कानों के दोनों में भर भर कर राम नाम रूप अमृत का बारम्बार पान करना चाहिये। मनमें निरन्तर तारक ब्रह्मरूप राम नाम का ही ध्यान करना चाहिये। मृत्युकाल में सभी प्राणियों के कानों के पास सम्बोधन करता हुआ कोई जटाधारी काशी निवासी (शिव जी) गली-गली में (ऐसा कहता हुआ) घूमता रहता है।

हे राजन् ! कलियुग दोषों का खजाना है फिर भी इसमें एक महान् गुण है। केवल भगवन्नाम का कीर्तन करने मात्र से सभी बन्धनों से मुक्त होकर जीव परमपद को जाता है। श्री कृष्ण ने कहा मेरे नाम में पाप नष्ट करने की जितनी अधिक शक्ति है, पापी जन्म भर उतना पाप नहीं कर सकता ॥ ७

भगवत् स्तुति महिमा

(मंगलम्) नागेन्द्रकन्या जन पूजिताय,
कालीय नाग दमनोत्सुकाय।
इन्द्रस्य कोपात व्रज रक्षकाय,
कलिन्द कन्यावरमीश मीडे ॥

भगवान् के लिए विविध श्लोकों द्वारा विविध लोगों ने स्तुति किया है।

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे, समुद्भवस्थान निरोध लीलया।
गृहीत शक्ति त्रितयाय देहिना, मन्तरभवायानुपलक्ष्यवर्त्मने।२।४।१२।

श्री शुकदेव जी ने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान् के चरण कमलों में मेरा कोटि कोटि नमस्कार है, जो संसार की उत्पत्ति स्थितिं और प्रलय की लीला करने के लिए सत्त्व, रज तथा तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का रूप धारण करते हैं, जो समस्त चर, अचर, प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजते हैं, जिनका स्वरूप और उपलब्धि का मार्ग बुद्धि का विषय नहीं है। जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठ पूर्वक भक्तिहीन साधन करने वाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते, जिनके समान किसी का भी ऐश्वर्य नहीं है, ऐसे ऐश्वर्यशाली भगवान्

श्री कृष्ण जो निरन्तर ब्रह्म रूप अपने धाम में विहार करते रहते हैं, मैं उनको बार-बार नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन् ! आपके जिन चरण कमलों की वन्दना ब्रह्मा शंकर और इन्द्र करते हैं जो इस संसार में कल्याण चाहने वालों के लिए परम आश्रय हैं, जिनकी शरण ले लेने पर परम समर्थ काल भी बाल बाँका नहीं कर सकता, आपके उन्हीं चरण कमलों को हम सदा सर्वदा प्रणाम करते हैं ॥

ब्रह्मा जी ने नारद जी से कहा कि—मैं तो केवल भगवान् के परम मंगलमय एवं शरण आये हुए भक्तों को जन्ममृत्यु से छुड़ाने वाले परमकल्याण स्वरूप चरणों को ही नमस्कार करता हूँ। उनकी माया की शक्ति अपार है जैसे आकाश अपने अन्त को नहीं जान सका। क्योंकि वह असीम है। ऐसी स्थिति में दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं ॥ देवताओं ने कहा—हे देव ! हम आपके चरण कमलों की बन्दना करते हैं। जो अपनी शरण में आये हुए जीवों का ताप दूर करने के लिए छत्र के समान हैं तथा जिनका आश्रय लेने से 'यतिजन' अनन्त संसार दुःख को सुगमता से ही पार कर जाते हैं वे (संसार के दुःख को दूर फेंक देते हैं) ॥

देवताओं ने कहा—प्रभो ! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले हैं तथा संसार की स्थिति के लिए शुद्ध सत्त्वमय मंगल विग्रह प्रकट करते हैं। बड़े आनन्द की बात है कि संसार को कष्ट देने वाला दुष्ट दैत्य मारा गया अब आपके चरणों की भक्ति के प्रभाव से हमें भी सुख शान्ति मिलेगी ॥ पृथ्वी ने कहा—

आप साक्षात् परम पुरुष हैं तथा माया से अनेक प्रकार के रूप धारण करते हैं इसलिए गुणमय जान पड़ते हैं, अपनी स्वरूप सत्ता में तो अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव सम्बन्धी अभिमान से उत्पन्न हुए राग द्वेषादि से सर्वथा रहित हैं। मैं आपकों नमस्कार करती हूँ।

प्रचेता गण वोले हे प्रभो! आप भक्तों के क्लेश दूर करने वाले है, हम आपको नमस्कार करते हैं आपके उदार गुण और नामों को वेदों ने समस्त कल्याणों की प्राप्ति का साधन बतलाया हैं, आपका वेग मन और वाणी के वेग से भी बढ़कर है, तथा आपका स्वरूप भी इन्द्रियों की गति से परे है। प्रजापति ने कहा—भगवन्! आपकी अनुभूति आपकी चित् शक्ति अगाध है। आप जीव और प्रकृति से परे, उनके नियन्ता औंर उन्हें सत्ता स्फूर्ति देने वाले हैं। जिन जीवों ने त्रिगुण मय सृष्टि को ही वास्तविक सत्य समझ रक्खा है, वे आपके स्वरूप साक्षात् कार करने में सर्वथा असमर्थ हैं क्योंकि आप तक किसी भी प्रमाण का पहूँच नहीं है आपकी कोई अवधि और सीमा नहीं है। आप स्वयं प्रकाश और परात्पर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्मा जी ने भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कहा—प्रभो आप अनन्त है आपकी शक्ति का पार कोई नहीं पा सकता। आपका पराक्रम विचित्र है और कर्म पवित्र हैं, यद्यपि गुणों के द्वारा आप लीला से ही पूर्ण विश्व का सृजन पालन और प्रलय करते हैं फिर भी आप उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, स्वय निर्विकार रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। (गजेन्द्र ने भगवान् की स्तुति करते

हुए कहा—) आप विश्व के कारण है आपको नमस्कार है फिर भी निष्कारण, तथा अद्भुत कारण है। आपको नमस्कार है। जैसे समस्त नदी झरने आदि का परम आश्रय समुद्र है। वैसे ही समस्त वेद और शास्त्रों का परम तात्पर्य आप ही हैं। आप मोक्ष रूप हैं सन्त जन आप ही का शरण ग्रहण करते हैं, अतः आपको नमस्कार करता हूँ। अक्रूर जी ने कृष्ण और बलराम जी को शेष तथा शेषशायी के रूप में देखकर नमस्कार किया। और कहा—

हे प्रभो! आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं, तथा आपके ही नाभी कमल से उन ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत की सृष्टि की है मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। श्रुत-देव ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा—हे प्रभो! जो लोग आत्म तत्त्व को जानने वाले है, उनके आत्मा के रूप में ही आप स्थित हैं और जो शरीर आदि को ही अपना आत्मा मान बैठे हैं उनके लिए आप अनात्मा को प्राप्त करने वाली मृत्यु के रूप में हैं। आप महतत्त्व आदि द्रव्य और प्रकृति रूप कारण के नियामक हैं आपकी माया आपकी दृष्टि पर पर्दा नहीं डाल सकती, किन्तु उसने दूसरों की दृष्टि को ढक रखा है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभो! आपकी शक्ति अनन्त है आप ब्रह्मादि ईश्वर के भी परमेश्वर हैं। आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं। आप अद्वितीय और केवल ज्ञान स्वरूप हैं। संसार के उत्पत्ति स्थिति, और संहार

के कारण भी आप ही हैं। श्रुतियों के द्वारा आप का ही वर्णन और अनुमान किया जाता है, आप समस्त विकारों से रहित स्वयं ब्रह्म है मैं आपको नमस्कार करता हूँ। (देवताओं ने भगवान् श्री कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा) प्रभो ! हम आपके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं। केवल वाणी से ही नहीं, हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वचन सबके सब आपके चरणों में समर्पित हैं। केवल हम ही क्यों कर्म के विकट फन्दों से छूटने की इच्छा वाले जितने भी मुमुक्षु हैं, वे सभी अपने हृदय में अत्यन्त प्रेममय भक्ति भाव से आपके चरण कमलों की उपासना करते हैं।

कर्तास्य सर्गादिषु यो न वध्यते,
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते,
तस्मै नमोऽसक्तविविक्त साक्षिणे ॥५।१९।१२॥

अर्थात् 'जो विश्व की उत्पत्ति-आदि में कर्ता होकर भी कर्तापन के अभिमान से नहीं बधते। शरीर में रहते हुए भी उसके धर्म (भूख प्यास) आदि के वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होने पर भी जिनकी दृष्टि दृष्य के गुण-दोषों से दूषित नहीं होती। उन असङ्ग एवं विशुद्ध साक्षिरूप भगवान् नारायण को नमस्कार है ॥

भगवान् के पद कमल की वन्दना

(मंगलम्) नीलंघनं नीलयुतं सुनीलं नीलालकं नील मणीवनीलम्।
नीलाङ्ग शोभा नलिनीव नीलं तं नील वर्णं प्रणतोऽस्मि कृष्णम् ॥

श्री शुकदेव जी ने कहा सनकादिक मुनीश्वर नीरन्तर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहा करते थे। जिस समय भगवान् कमल नयन के चरणारविन्द से मिली दुई तुलसी मञ्जरी के गन्ध से सुवासित वायु ने नासा रन्ध्रों से उनके अन्तःकरण में प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीर को सँभाल न सके और उस दिव्य गन्ध ने उनके मनमें भी क्षोभ पैदा कर दी ॥ (कर्दम ऋषि ने भगवान् से कहा) जिन लोगों की बुद्धि आपकी माया से मारी जाती है, वे ही इन तुच्छ क्षणिक विषय सुख के लिए आपके चरण कमलों का आश्रय लेते हैं, किन्तु स्वामिन्! आप तो उन्हें वे विषय भोग भी दे देते हैं, यद्यपि वे तो नरक में भी मिलते हैं।

(महाराज पृथु ने यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु से कहा)—हे पुण्य कीर्ति प्रभो ! आपके चरण कमलों के मकरन्द रूपी अमृतकणों को लेकर महापुरुषों के मुख से जो हवा निकलती है, उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व के भूले हुए कुयोगियों को पुनः तत्त्व ज्ञान करा देती है। अतः मुझे यही वर दीजिये और कुछ नहीं।

पुनः राजा पृथु ने कहा प्रभो ! आप में माया के कार्य अहंकारादि का सर्वथा अभाव है। भगवन् मुझे तो आपके चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन करने के सिवा सत्पुरुषों का और कोई प्रयोजन नहीं जान पड़ता है। मैं भी आपका भजन ही करना चाहता हूँ। आपने जो मुझ से कहा कि वर माँग, सो आपकी इस वाणी को तो मैं संसार के मोह में डालने वाली ही मानता हूँ।

राजा पृथु ने चरणधूलि की महिमा बताते हुए कहा—उन तपो-पूत ब्राह्मणों के चरणकमलों की धूलि को मैं आयु पर्यन्त अपने मुकुट में धारण करूँ क्योंकि उसे सदा शिर पर चढ़ाते रहने से मनुष्य के सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण गुण उसकी सेवा करने लगते हैं। श्री सनत्कुमार जी बोले हे महाराज पृथु जी ! मधुसूदन भगवान् के चरण कमलों के गुणानुवाद में अवश्य ही आपकी अविचल प्रीति है। हर किसी को इसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है और प्राप्ति हो जाने पर यह हृदय के भीतर रहने वाले उस वासना रूप मल को सर्वथा नष्ट कर देती है जो किसी उपाय से जल्दी छूटता नहीं।

शुकदेव जी ने कहा—हे परीक्षित् भगवान् के चरणकमलों का धोवन परम मङ्गलमय हैं। उससे सारे जीवों के पाप ताप धुल जाते हैं। स्वयं देवादि देव महादेव सदाशिव ने अत्यन्त भक्ति भाव से उसे अपने शिर पर धारण किया था। आज वही चरणामृत धर्म के मर्मज्ञ राजा बली को प्राप्त हुआ। उन्होंने बड़े प्रेम से उसे अपने मस्तक पर रखा।

(श्री शुकदेव जी ने कहा)—हे परीक्षित् ! ब्रह्मा जी के कमण्डलु का जल विश्व रूप भगवान् के पाद प्रक्षालन से पवित्र होने के कारण उन गंगाजी के रूप में परिणत हो गया, जो आकाश मार्ग से गिर कर तीनों लोकों को पवित्र करती हैं, ये गंगा जी क्या हैं, साक्षात्, भगवान् की मूर्तिमान उज्ज्वल कीर्ति हैं। (ब्रह्मा जी ने वामन् भगवान से कहा प्रभो !)

जो मनुष्य सच्चे हृदय से कृपणता छोड़कर आपके चरणों के जल का अर्घ्य देता हैं और केवल दूर्वादल से भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गति की प्राप्ति होती है फिर वली ने तो बड़ी प्रसन्नता से धैर्य और उत्साह पूर्वक आप को त्रिलोकी का दान कर दिया है। तब यह दुःख का भागी कैसे हो सकता है। (तथा प्रह्लाद जी ने भी कहा)—हे शरणागत वत्सल प्रभो ! ब्रह्मा आदि लोक पाल तो आपके चरण कमलों का मकरन्द रस सेवन करने के कारण सृष्टि रचना शक्ति आदि अनेक विभूतियां प्राप्त करते हैं। हम लोग तो जन्म से ही खल और कुमार्ग गामी हैं, हम पर आपकी ऐसी अनुग्रह पूर्ण दृष्टि कैसे हो गयी, जो हमारे द्वारपाल ही आप बन गये। अवश्य आपकी अहैतुकी कृपा है। (देवताओं ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा।)

हे कमल नयन प्रभु ! कुछ विरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियों के आश्रय स्वरूप, रूप में पूर्ण एकाग्रता से अपना चित्त लगाते हैं। आपके चरण कमल रूपी जहाज का आश्रय लेकर इस

संसार सागर को बछड़े के खुर के गड्ढे के समान अनायास ही पार कर जाते हैं, क्यों न हो अब तक के सन्तों ने इसी जहाज से संसार सागर को पार किया है। परम प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आपके भक्त जन सारे जगत् के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैसी होते हैं, वे स्वयं तो इस भयंकर कष्ट से पार करने योग्य संसार सागर को पार कर ही जाते हैं किन्तु औरों के कल्याण के लिये भी वे यहाँ आपके चरण कमलों की नौका स्थापित कर जाते हैं। वास्तव में सत्पुरुषों पर आपकी महान् कृपा है उनके लिए आप अनुग्रह स्वरूप ही हैं।

देवताओं ने कहा हे कमल नयन प्रभो! जो लोग आपके चरण कमलों का शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्ति भाव से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं हैं, वे अपने को झूठ मूठ मुक्त मानते हैं वास्तव में बद्ध ही हैं। वे यदि बड़ी तपस्या और साधना का कष्ट उठाकर किसी प्रकार उंचे से उंचे पद पर पहुँच जायें तो भी वहाँ से नीचे ही गिरते हैं। और सन्त पुरुष सदा से ही भगवान् के चरण कमलों का आश्रय लेते आये हैं भगवान् श्रीकृष्ण की कीर्ति परम पवित्र है। जो उनके चरण कमल रूपी नौका का आश्रय ले लेते हैं, उनके लिए यह भवसागर बछड़े के खुर के चिन्ह के समान हो जाता है, इसे पार करने में कुछ भी परिश्रम नहीं होता उन्हें पद पद पर परम पद का साक्षात्कार होता रहता है। (विपत्तियों से भरा पूरा यह संसार उन्हें कभी प्राप्त नहीं होता॥)

भगवान् श्री कृष्ण ने बलराम जी से कहा हे देव शिरोमणे! यों

तो बड़े बड़े देवता आपके चरण कमलों की पूजा करते हैं, परन्तु देखिये, तो ये वृक्ष भी अपनी डालियों से सुन्दर पुष्प और फलों की सामग्री लेकर आपके चरण कमलों में झुक रहे हैं। (नमस्कार कर रहे हैं) क्यों न हो इन्होंने अपने अज्ञान का नाश करने के लिए ही तो वृन्दावन धाम में वृक्ष योनि ग्रहण की है, इनका जीवन धन्य है। भगवान् ने इस प्रकार अपनी योग माया से अपने स्वरूप को छिपा रखा था। वे लीलायें करते जो ठीक ठीक गोप बालकों की सी ही मालूम पड़ती है, स्वयं भगवती लक्ष्मी जिनके चरण कमलों की सेवा में संलग्न रहती हैं, वे ही भगवान् इन ग्रामीण बालकों के साथ बड़े प्रेम से ग्रामीण खेल खेला करते थे। परीक्षित ! ऐसा होने पर भी कभी कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलायें भी प्रकट हो जाय करती थी ।। (गोपाङ्गनाओं ने कहा)—

भगवन् ! तुम्हारे चरण कमल से भी कोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओं को चराने के लिये ब्रज से निकलते हो तब यह सोच कर कि तुम्हारे वे युगल चरणों में कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जाने से कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है, हमें बड़ा दुःख होता है। हे अन्तर्यामी एक मात्र तुम्ही हमारे सारे दुःखों को मिटाने वाले हो। तुम्हारे चरण कमल शरणागत भक्तों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं। स्वयं लक्ष्मी जी भी उनकी सेवा करती हैं पृथ्वी के तो भूषण ही हैं। आपत्ति के समय एक मात्र उन्हीं का चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं।

कुञ्जविहारी तुम अपने वे परम कल्याण स्वरूप चरण हमारे वक्ष स्थल पर रख कर हृदय की व्याथा शान्त कर दो ॥ श्री शुकदेव जी ने कहा हे राजन् !

जिनके चरणकमलों का रज सेवन करने से भक्तजन तृप्त हो जाते हैं। जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभाव से योगी जन अपने सारे कर्म बन्धनों को काट डालते हैं, विचारशील ज्ञानी जन जिनके तत्त्व का विचार करके तत्वस्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं। वे ही भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय विग्रह प्रकट करते हैं। अतः उनमें कर्म बन्धन की कल्पना ही कैसे हो सकती है। जिनके चरण कमलों की रज को सभी लोकपाल अपने किरीटों द्वारा सेवन करते है। (अक्रूर जी ने गोष्ठ में भगवान् के चरण चिन्हों का दर्शन किया कमल, यव, अंकुशादि असाधारण चिन्हों द्वारा उनकी पहचान हो रही थी और उनसे पृथ्वी की शोभा बढ़ रही थी ॥

नाग्नजिती सत्या ने कहा भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शंकर और बड़े बड़े लोकपाल जिनके पद पंकज का पराग अपने शिर पर धारण करते हैं और जिन प्रभु ने अपनी बनाई हुई मर्यादा का पालन करने के लिए ही समय समय पर अनेकों लीला अवतार ग्रहण किया है। वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियम से प्रसन्न होंगे। वे तो केवल अपनी कृपा से ही प्रसन्न हो सकते हैं। (रूक्मिणी जी ने कहा) भगवन् ! आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक

पुरुषों जैसा आचरण भी नहीं करते, यह बात निसन्देह सत्य है। क्योंकि जो ऋषि मुनि आपके पाद पद्मों का मकरन्द रस सेवन करते हैं, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और विषयों में उलझे हुए नर पशु उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। हे अनन्त ! आपके मार्ग पर चलने वाले आपके भक्तों के भी चेष्टायें प्रायः अलौकिक ही होती है, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्यों के आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है ॥

पुनः (रुक्मिणी जी ने कहा) आप कहते हैं कि तुम और किसी राजकुमार का वरण करो—भगवन् ! आप समस्त गुणों के एक मात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े सन्त आपके चरण कमलों के सुगन्ध का बखान करते रहते हैं। उनका आश्रय लेने मात्र से लोग संसार के पाप तापों से मुक्त हो जाते हैं। लक्ष्मी उन्हीं में सदा निवास करती हैं। फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थ को भली भाँति समझने वाली ऐसी कौन सी स्त्री है, जिसे एक बार उन चरण कमलों का सुगंध सूघने को मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगों को वरण करे जो सदा मृत्यु रोग, जन्म जरा आदि से युक्त है। कोई भी बुद्धिमती स्त्री ऐसा नहीं कर सकती।

हे कमल नाभ ! अगाध बोध सम्पन्न बड़े बड़े योगेश्वर अपने हृदय में आपके चरण कमलों का चिन्तन करते रहते हैं। जो लोग संसार के कुएँ में गिरे हुये हैं, उन्हें निकलने के लिए आपके चरण

कमल ही एकमात्र अवलम्बन हैं। प्रभो ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि वह चरण कमल, घर गृहस्थी के काम करते रहने पर भी सदा सर्वदा हमारे हृदय में विराजमान रहें, हम एक क्षण के लिए भी उसे न भूले।

राजा वलि ने कहा हे प्रभो ! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी चित्तवृत्ति आपके उन चरणकमलों में लग जाय, जिससे किसी की अपेक्षा न रखने वाले परमहंस लोग ढूँढा करते हैं और उनका आश्रय लेकर मैं इस घर गृहस्थी के अँधेरे कुएँ से निकल जाऊँगा। प्रभो ! इस प्रकार उन चरण कमलों की जो सारे जगत के एकमात्र आश्रय है, शरण लेकर शान्त हो जाऊँगा अकेला ही विचरण करूँगा। यदि कभी किसी का संग करना ही पड़े तो सबके परम हितैषी सन्तों का ही करूँगा। (श्री श्रुतदेव ने कहा) उस समय मन ही मन तर्क करने लगा कि मैं तो घर गृहस्थी के अंधेरे कुएँ में गिरा हुआ हूँ, अभागा हूँ मुझे भगवान् श्री कृष्ण का तथा उनके निवास स्थान ऋषि मुनियों का समागम कैसे प्राप्त हो गया। अहो इनके चरणों की धूलि ही समस्त तीर्थों को तीर्थ बनाने वाली है॥

भगवान् के शरण के बिना भय की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए तो आत्मा से अतिरिक्त अनात्म वस्तु में अभिनिवेश हो गया है, जीव यह मान बैठा है कि यह मैं हूँ, ऐसा क्यों हुआ इसलिये कि जीव भगवान् से विमुख होकर उनको भूल गया है, इस भूल का ही नाम अज्ञान है (विपर्यय है)। परन्तु जीव भूला ही क्यों भगवान्

के माया के कारण, तब तो बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि माया से छूटने के लिये माया पति परमेश्वर की अनन्य भक्ति से उपासना करे और उन्हीं का भजन करे। परन्तु भजन की प्राप्ति तब होती है, जब गुरुदेव जी को ही अपना इष्टदेव बनावें। और परम प्रियतम आत्मा समझ कर उपासना करे।

(करभाजन मुनि ने कहा) जो प्रेमी भक्त अपने प्रियतम भगवान् के चरण कमलों का अनन्य भाव से (दूसरी भावनाओं, अस्थाओं, वृत्तियों, प्रवृत्तियों) को छोड़ कर भजन करता है, उससे पहली बात तो यह है कि पाप कर्म होते ही नहीं। परन्तु यदि कभी किसी प्रकार हो भी जायँ तो परम पुरुष भगवान् श्री हरि उसके हृदय में बैठ कर सब धोकर बहा देते हैं, उसके हृदय को शुद्ध कर देते हैं। उद्धव जी ने कहा हे कमल नयन ! आप विश्वेश्वर हैं। आपके ही द्वारा सारे संसार का नियमन होता है इसी से सार असार विचार में चतुर मनुष्य आपके आनन्द वर्षीचरण कमलों का शरण लेते हैं, अनायास ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, आप की माया उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती क्योंकि उन्हें योग साधन और कर्मानुष्ठान का अभिमान नहीं होता। परन्तु जो आपके चरणों का आश्रय नहीं लेते वे योगी और कर्मी अपने साधन के घमण्ड से फूल जाते हैं, अवश्य ही आपकी माया से उनकी मति हर ली है॥

सूतजी ने कहा कि वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण, तपस्या, और अध्ययन आदि के लिए जो बहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है, उसका

फल है केवल यश अथवा लक्ष्मी प्राप्ति परन्तु भगवान् के गुण, लीला, नाम अदि का श्रवण कीर्तन आदि तो उनके श्री चरण कमलों की अविचल स्मृति प्रदान करता है। श्री उद्धव जी ने कहा प्रभो ! आप सबके हितैषी सुहृद हैं। आप अपने अनन्य शरणागत बलि आदि सेवककों के अधीन हो जांय यह आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि आपने रामावतार ग्रहण करके वानरों से भी मित्रता का निर्वाह किया। यद्यपि ब्रह्मा आदि लोकेश्वर भी अपने दिव्य किरीटों को आपके चरण कमल रखने की चौकी पर रगड़ते रहते हैं॥ ११।२९॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं,
तीर्थास्पदं शिव विरञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणत पाल भवाब्धि पोतं,
वन्दे महापुरुषते चरणारविन्दम्॥ ११।५।३३॥
त्यक्त्वासुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्यलक्ष्मी,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सित मन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥११।५।३४॥

कलियुग में भगवान की वन्दना इस प्रकार करना चाहिये। हे प्रभो ! आप शरणागतों के रक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा सर्वदा ध्यान करने योग्य है, माया मोह के कारण होने वाले सांसारिक पराजयों का अन्त करने वाले तथा भक्तों को समस्त अभिष्ट वस्तुओं का दान कर देने वाले कामधेनु स्वरूप हैं। वे तीर्थों को भी तीर्थ

बनाने वाले स्वयं परम तीर्थ रूप हैं, शिव ब्रह्मा आदि बड़े बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं। जो कोई उनकी शरण में आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं, सेवकों की समस्त अर्ति और विपत्ति के नाशक तथा संसार सागर से पार जाने के लिए जहाज है। हे महापुरुष मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ। भगवन् आपके चरण कमलों की महिमा कौन कहे ! रामावतार में अपने पिता दशरथ जी के वचनों से देवताओं के लिए भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्य लक्ष्मी को छोड़कर आपके चरण कमल वन वन घूमते फिरे। सचमुच आप धर्म निष्ठा की सीमा है। हे महापुरुष अपनी प्रेयसी सीता जी के चाहने पर जान बूझकर आपके चरण कमल माया मृग के पीछे दौड़ते रहे, सचमुच आप प्रेम की सीमा हैं। प्रभो ! मैं आपके उन्ही चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो,
दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेऽपिजन्म-
कृष्ण प्रणामी न पुर्नभवाय ॥

अर्थात् जिसने एक वार भी भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र को प्रणाम किया उसको दश अश्वमेध यज्ञ के अन्त में 'अवभृथ' स्नान के बराबर फल प्राप्त हुआ। दश अश्वमेध यज्ञ करने वाला फिर संसार में जन्म लेता है। किन्तु श्री कृष्ण को प्रणाम करने वाले का फिर संसार में जन्म नहीं होता। सदा के लिए मुक्त हो जाता है।



श्री रामचन्द्र जी की भक्ति की महिमा

(मंगलम्) नीलाम्बुजश्याम तनुं सतां गतं,
सीता पतिं यज्ञ पतिं जगत्पतिम् ।
निष्किञ्चनानां परमं च सद्गतिं,
श्रीरामचन्द्रं प्रणमामि मे गतिम् ।।

पराम्बा भगवती पार्वती जी ने सदाशिव आशुतोष शंकर जी से पूछा—हे प्रभो ! भगवान् श्री रामचन्द्र जी की विशुद्ध भक्ति संसार-सागर से पार जाने के लिये सुदृढ़ नौका है, परन्तु मेरे मन में एक संका है उसे आप दूर करें। भगवान् श्री राम ने परमात्मा परब्रह्म हो कर भी सीता के लिये रुदन किया इसका क्या कारण है। शिव जी ने कहा भगवान् राम ने जान बुझ कर ही नर लीला की है अज्ञान से नहीं—जैसे सूर्य में अन्धकार नहीं होता है उसी प्रकार श्री राम में अज्ञान नहीं हो सकता, अज्ञानी लोग ही अज्ञान वश उनको अज्ञानी मानते हैं। इत्यादि ।। श्री राम की भक्ति के सम्बन्ध में ब्रह्मा जी ने कहा है ।।

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तुमे ।
संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ।।

भगवन् ! आपके चरण कमलों में सदा मेरी 'भक्ति' बनी रहे। क्योंकि संसार रोग के रोगियों के लिये आपकी भक्ति ही एक मात्र महौषधि है।

(अहल्या जी ने भी कहा है कि)

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥

मैं जहाँ कहीं भी रहूँ सदा सर्वदा आपके चरणों में मेरी आसक्ति पूर्ण 'भक्ति' बनी रहे ।

(नारद जी ने भी कहा है कि)

त्वत्पाद भक्ति युक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।
तस्मात्त्वद्भक्ति युक्तास्तेमुक्ति भाजास्त एव हि ॥
अहंत्वत्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किंकरम् ।
अतो मामनुगृह्णस्व मोह्यस्व न मां प्रभो ॥

अ० रा० वा २९।३० ।

हे प्रभो ! आपके चरण कमलों की भक्ति से युक्त पुरुषों को ही क्रमशः ज्ञान की प्राप्ति होती है । अतः जो पुरुष आपकी भक्ति से युक्त है वही वास्तव में मुक्ति का पात्र है । मैं आपके भक्तों के भक्त और उनके भी भक्तों के दास हूँ । अतः आप मुझे मोहित न करके अनुग्रह कीजिये ॥ भगवान् श्री राम ने स्वयं भी 'भक्तिमती' शवरी को भक्ति का उपदेश करते हुए कहा है । हे शवरि !

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादय ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययन कर्मभिः ।
नैवद्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्ति विमुखैः सदा ॥

भाव यह है कि भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने शवरी से कहा—मेरी भक्ति करने में पुरुष तथा स्त्री का भेद और जाति, नाम, आश्रम ये कोई भी कारण नहीं है। जो मेरी 'भक्ति' से विमुख हैं, वे यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्म से मुझे कभी नही देख सकते। हे शवरि ! मैं संक्षेप से अपनी 'भक्ति' के साधनों का वर्णन करता हूँ सुनो ! प्रथम भक्ति सत्संग है। दूसरी भक्ति भगवान के जन्मों की कथा कीर्तन करना है। ३. भगवान् के गुणों की चर्चा करना तीसरी भक्ति है। ४. गीता उपनिषदादि भगवान् के वाक्यों की व्याख्या करना चौथी भक्ति है। ५. अपने गुरुदेव की निष्कपट होकर भगवत् बुद्धि से सेवा करना पाँचवी 'भक्ति' है ६. पवित्र स्वभाव यम, नियम आदि का पालन तथा मेरी पूजा में सदा प्रेम होना छठी 'भक्ति है। ७. मेरे मंत्र की साङ्गोंपाङ्ग उपासना करना सातवीं 'भक्ति' कहलाती है। ८. मेरे भक्तों का मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना, वाह्य पदार्थों से वैराग्य करना और शमदमादि सम्पन्न होना, यह मेरी आठवीं 'भक्ति' कहलाती है। यथाशक्ति भगवत् तत्त्व पर विचार करना यह नवमी 'भक्ति' कहलाती है। जिस किसी में यह नवविधा 'भक्ति' होती है वह स्त्री हो या पुरुष अथवा पशु, पक्षी आदि कोई भी क्यों न हो उसमें प्रेम लक्षणा 'भक्ति' का आविर्भाव हो जाता है। भक्ति के उत्पन्न होने मात्र से ही मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और उसकी उसी जन्म में निःसन्देह मुक्ति हो जाती हैं। अतः यह सिद्ध

हुआ कि मोक्ष का साधन भक्ति ही है। 'भक्ति' के उपरोक्त नौ साधनों में से जिसमें पहला भी साधन हो जाता है, उसे क्रमशः ये सभी साधन आ जाते हैं। तब उसे 'भक्ति' तथा मुक्ति का प्राप्त होना निश्चित है। शवरी तूँ मेरी भक्ति से युक्त है इसलिए तेरे पास आया हूँ। अब यह मेरा दर्शन होने से तेरी मुक्ति हो जायगी इसमें सन्देह नहीं है (शंकर जी ने पार्वती जी से कहा हे देवी) भक्तवत्सल जगन्नाथ श्री राम के प्रसन्न होने पर क्या दुर्लभ है—देखो उनकी कृपा से नीच जाति में उत्पन्न शवरी ने भी मोक्ष पद प्राप्त कर लिया फिर श्री राम का ध्यान करने वाले पुण्य जन्मा ब्राह्मण आदि मुक्त हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है। निसन्देह राम की भक्ति ही मुक्ति है। अरे लोगों श्री रामचन्द्र जी की 'भक्ति' ही मोक्ष देने वाली है, अतः कामधेनु रूप उनके चरण युगलों की उत्सुकता से सेवन करो हे बुद्धिमान लोगों ! इस विविध विज्ञान लताओं और मंत्र विस्तार को अत्यन्त दूर रखकर श्री शंकर जी के हृदय धाम में शोभा पाने वाले श्याम शरीर श्री भगवान् राम का अत्यधिक भजन करो। (इसी प्रकार सुग्रीव जी ने भगवान् श्री रामचन्द्र जी की 'भक्ति' की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हुए कहा)—

त्वत्पाद पद्मार्पित चित्तवृत्ति, स्त्वन्नाम सङ्गीत कथासुवाणी।
त्वद्भक्त सेवा निरतौकरौमे, त्वदङ्गसङ्ग लभतां मदङ्गम्॥
त्वन्मूर्ति भक्तान् स्वगुरूं च चक्षुः, पश्यत्वजस्त्रं स श्रृणोतु कर्णः।
त्वज्जन्म कर्माणि च पाद युग्मं, व्रजत्वजस्त्रं तव मन्दिराणि॥
अङ्गानिते पादसरोजमिश्र, तीर्थानि विभ्रत्वहिशत्रुकेतो।

शिरस्त्वदीयं भव पद्मजाद्यैः, जुष्टं पदं रामनामस्त्वजस्त्रम् ।।

अ० कि० १।९१।९२।९३ ।

अर्थात् हे प्रभो ! मेरी चित्तवृत्ति सदा आपके चरण कमलों में लगी रहे। वाणी आपके नाम कीर्तन में लगी रहे। 'कथा और कीर्तन करती रहे। हाथ सदा आपके भक्तों की सेवा में लगा रहें मेरा शरीर आपके चरण स्पर्श द्वारा सदा आपका अङ्ग सङ्ग करता रहे, मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति का, आपके भक्तों तथा अपने गुरु का दर्शन करते रहें। कान निरन्तर अवतारों की लीलाओं का श्रवण करें। मेरे पैर सदा आपके मन्दिर की यात्रा करते रहें। हे गरुड़ध्वज मेरा शरीर आपके चरण रज से युक्त तीर्थोदक को धारण करे। मेरा शिर निरन्तर आपके उन चरणों में प्रणाम किया करे जिनको ब्रह्मादिदेवगण भी सदा सेवन करते हैं।। (नारद जी ने श्री राम चन्द्र जी की स्तुति करते हुए कहा)—

हे राम जी जो लोग आपकी पूजा में तत्पर रहते हैं, आपके कथामृत का पान करते रहते हैं तथा आपके भक्तों का सङ्ग करते रहते हैं उनके लिए यह संसार समुद्र के समान दुस्तर होने पर भी गौखुर के समान तुच्छ हो जाता है। (अर्थात् अनायास ही पार कर लिया जाता है)। इसी प्रकार ब्रह्मा जी ने भी भगवान् श्री रामचन्द्र की स्तुति किया। और कहा—

राम ! आप मेरे प्रभु हैं और मेरे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्यों को पूर्ण करने वाले हैं। आप देश काल आदि (मान) से रहित हैं। नारायण

स्वरूप अखिल विश्व को धारण करने वाले हैं, भक्ति से प्राप्त होने वाले हैं। आपके स्वरूप का ध्यान किए जाने पर संसार भय को दूर करने वाले और योगाभ्यास से शुद्ध दुए चित्त में विहार करने वाले हैं। आप इस लोक परम्परा के आदि और अन्त (अर्थात् उत्पत्ति और प्रलय के स्थान हैं) सम्पूर्ण लोकों के महेश्वर हैं, आप किसी भी लौकिक प्रमाणों से जाने नहीं जा सकते। आप भक्ति और श्रद्धा सम्पन्न पुरुषों द्वारा ही भजन किए जाने योग्य हैं। ऐसे नील कमल के समान श्याम सुन्दर आप श्री रामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ ।। (भगवान् सदाशिव ने श्री राम जी की स्तुति करते हुए कहा—

तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते, जनाः समस्तास्तव माययातः ।
त्वद्भक्त सेवामलमानसानां, विभाति तत्त्वं परमेकमैशम् ।।
ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं, चिदात्मतत्त्वं वहिरर्थभावाः ।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं, भक्त्या भजन् मुक्ति मुपैत्य दुःखः ।।
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो, वसामि काश्यामनिशंभवान्या ।
मुमूर्षु माणस्य विमुक्तयेऽहं, दिशामिमन्त्रंतव 'रामनाम' ।।

अ० यु० स० १५।६०।६१।६२।

हे राम ! आपकी माया से मोहित होने के कारण सब लोग आपके परमात्म स्वरूप का तत्त्व नहीं जानते। अतः जिनका अन्तःकरण आपके भक्तों की सेवा से निर्मल हो गया है उन्हीं को आपका अद्वितीय ईश्वर रूप भासता है। जिनकी वाह्य पदार्थों में सत्य बुद्धि है वे ब्रह्मा आदि भी आपके चित् स्वरूप को नहीं जानते। फिर

औरों की तो बात ही क्या है। अतः बुद्धिमान् पुरुष इस श्याम सुन्दर स्वरूप से ही आपका भक्तिपूर्वक भजन करके दुःखों से पार होकर, मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। प्रभो! आपके नामोच्चारण से कृतार्थ होकर मैं अहर्निश पार्वती जी के साथ काशी में रहता हूँ। और वहाँ मरणासन्न जीवों को उनके मोक्ष के लिए आपके रामनाम तारक 'मन्त्र' का उपदेश करता हूँ॥ (इसी प्रकार तुलसी कृत रामायण में भी शवरी से श्री रामचन्द्र जी कहते हैं—हे शवरि!)

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानहु एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहई कैसा। बिनु जल वारिद देखिय जैसा॥
नवधा भक्ति कहहु तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धरु मनमाहीं॥
प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करई कपट तजि गान॥

पंचम भजन सो वेद प्रकाशा। मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा॥
छठ दम शील विरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें सन्त अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हियँ हरषन दीना॥
नव महुं एकऊ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोई अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥
जोगी वृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभभइ सोई॥
मम दरशन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

श्री राम स्तवनम्

रामं नीलघनश्यामं पीतकौसेय वाससम् ।
चापवणधरंदेवमवधेशं नतोस्म्यहम् ।।
किरीटिनं कुण्डलिनं कौस्तुभेन सुशोभितम् ।
भक्तवत्सल देवेशं रामचन्द्रं नतोऽस्म्यहम् ।।
निलाम्बुजसमनेत्रे सहस्त्रेन्दु समंमुखम् ।
लक्षेन्दुसमसौन्दर्यं तन्नमामि रघुत्तमम् ।।
तुलसीवनमालां च वक्षसि समलंकृतम् ।।
सुस्मितवदनं देवं तन्नमामि रमापतिम् ।।
मुनिवेष धरं दिव्यं सीता सौमित्री संयुतम् ।
दण्डकारण्य गमनं तन्नमामि जगत्पतिम् ।।
राघवं जानकीनाथं रघुवंश विभूषणम् ।
सच्चिदानन्द रूपं तं प्रणमामि निरन्तरम् ।।
पतितोद्धारकारूण्यं पाप पुञ्ज विनाशकम् ।
मायामानुषरूपं च तन्नमामि सतांगतिम् ।।
श्री रामचन्द्रं रघुवंश नाथं, परात्परं निर्मलमादिदेवम् ।
विभुंसदानन्दमयं निरामयं, श्री रामचन्द्रं प्रणमामि नित्यम् ।।

न धनं न जनं न सुन्दरीं, कवितां वाजगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे, भवतात् भक्तिरहैतुकीत्वयि ।।

अर्थात् भगवान् का भक्त कहता है—न धन चाहिये न जन, न सुन्दरी स्त्री न तो सुन्दर कविता (मान प्रतिष्ठा) चाहिये । हे भगवन् ! जन्म. जन्म तक आप की अहैतुकी भक्ति वनी रहै ।

सुप्रभातम्

श्री गणेश प्रातः स्मरणम्

प्रातर्भजाम्यभयदं खलुभक्तशोक, दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञानकाननविनाशन हव्यवाह, मुत्साहवर्द्धनमहं सुतमीश्वराय ॥ १॥

श्री विष्णो प्रातः स्मरणम्

त्रैलोक्यचैतन्यमयादि देव, श्रीनाथविष्णो भवदाज्ञयैव ।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं, संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥ २ ॥

विविध कार्य के लिए स्मरण

औषधेचिन्तयेद्विष्णुं, भोजने च जनार्दनम् ।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम् ॥ ३ ॥
युद्धे चक्रधरंदेवं, प्रवासे च त्रिविक्रमम् ।
नारायणं तनुत्यागे, श्रीधरं प्रियसङ्गमे ॥ ४ ॥
दुःस्वप्नेषु च गोविन्दं, संकटे मधुसूदनम् ।
कानने नरसिंहं च, पावके जलशायिनम् ॥ ५ ॥
जलमध्ये वराहं च, पर्वते रघुनन्दनम् ।
काननेवामनं चैव, सर्वकार्येषु माधवम् ॥ ६ ॥
एतानि विष्णुनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्व पाप विनिर्मुक्तो, विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥

संकट नाश के लिए

हरं हरिं हरिश्चन्द्रं, हनुमन्तं हलायुधम् ।
पञ्चकं वै स्मरेन्नित्य, घोरसंकटनाशनम् ॥ ८ ॥

आपन्निवारणार्थं

प्रभाते यस्स्मरेन्नित्यं दुर्गादुर्गाक्षरद्वयम् ।
आपदस्तस्य नश्यन्तितमसूर्योदये यथा ॥ ९ ॥

आयु प्राप्ति के लिए

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो, हनुमाश्चविभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तै ते चीरजीविनः ॥ १० ॥

सप्तैतान् स्मरेन्नित्यं मार्कण्डेय मथाष्टमम् ।
जीवेत् वर्षं सतंसाग्रं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥ ११ ॥

कलिनाशकम्

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्यानलस्य च ।
ऋतुपर्णस्य राजर्षे कीर्तनं कलिनाशनम् ॥ १२ ॥

नष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ।
यस्य संकीर्तयेन्नाम कल्य उत्थाय मानवः ।
न तस्यवित्तनाशस्यान्नष्टं च लभते पुनः ॥ १३ ॥

वस्तु चोरी से रक्षा

तिस्त्रोभार्याकफल्लस्यदायिनीमोहिनी सती ।
तासां स्मरण मात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः ॥ १४ ॥

सर्पभय नाशार्थ

सर्पापसर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविषः ।
जन्मेजयस्य यज्ञान्ते आस्तिकः वचनस्मर ॥ १५ ॥

सुख शयनार्थ

जलेरक्षतु वाराह स्थलेरक्षतु वामनः ।
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतोऽवतु केशव ॥ १७ ॥

क्लेश क्षयार्थं

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ १८ ॥

भोजन प्राप्त्यर्थ

गच्छ गौतम शीघ्रं च ग्रामेषु नगरेषु च ।
आसनं भोजन चैव रथानं मे परिकल्पय ॥ १९ ॥

॥ इति सुप्रभातम् ॥

द्वितीय खण्ड

शिवरात्रि व्रतकथा और महात्म्य

मंगलम्

नमः शिवाय शान्ताय शुद्धाय शूलधारिणे।
नमस्ते शक्तियुक्ताय मंगलाय च वै नमः॥

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा—हे नारद ! शिवजी के असंख्य व्रत हैं। भुक्ति और मुक्ति दोनों को देते हैं। उन व्रतों को अवश्य करना चाहिये। निम्नांकित व्रत अवश्य सिद्धिप्रद हैं। ये १२ व्रत शिवजीको अतिप्रिय हैं। अष्टमी, दोनों पक्ष की एकादशी, दोनों पक्ष की त्रयोदशी, दोनों चतुर्दशी, एक महीने में जितने सोमवार पड़े, ये सब मिलकर १२ व्रत हैं। अष्टमी को फलाहार करे, एकादशी को निर्जला व्रत करे। दोनों त्रयोदशी में एक बार भोजन करे। कृष्ण पक्ष की एकादशी को एक भुक्त व्रत करे। शुक्ल पक्ष के चतुर्दशी को भी एक भुक्त व्रत करे। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को निर्जला व्रत करे। दिन एवं रात के सभी पहरों में शिवजी की पूजा करे। सोमवार को शक्ति सहित शिव की पूजा करे। उपरोक्त व्रतों में शिवजी के भक्तों को भोजन देवे। शक्ति के अनुसार दान देवे। इन व्रतों में जो मनुष्य एक भी व्रत नहीं करता, उस पतित के ऊपर शिवजी कभी प्रसन्न नहीं होते। वह मनुष्य दोनों लोकों में दुःखी रहता है। उपरोक्त व्रतों में यदि महीने में एक भी व्रत करता है, वह भी उत्तम है।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! चार चीजें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली हैं—रुद्र जाप, शिवपूजा, शिव का व्रत तथा काशी में मरना। ये चारों शिवजी को परमप्रिय हैं तथा संसार में मनुष्य को बड़ा सुख देनेवाले हैं। उपरोक्त व्रतों में शिवरात्रि का सबसे अधिक महत्त्व है।

शिवरात्रि व्रत महात्म्य

सभी वर्ण-आश्रम तथा जाति के लोग इस व्रत को कर सकते हैं। बाल, युवा तथा स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। यह व्रत सकाम-निष्काम दोनों के लिए विहित है। इस व्रत से शिवलोक मिलता है। यह व्रत असंख्य हत्याओं को मिटाने वाला है। असंख्य पुण्यों को देने वाला है। इसकी महिमा का वर्णना शेषनाग और शारदा नहीं कर सकतीं। इस व्रत को करने वालों को मुक्ति मिलती है। इसे व्रतराज कहते हैं। सब व्रत इसको सिर झुकाये रहते हैं। शिवजी को यह व्रत पार्वती के समान प्रिय है।

यज्ञदत्त ब्राह्मण के पुत्र गुणनिधि और स्त्री सुमति तथा व्याध आदि ने अनजान में इसी व्रत को करके उत्तम गति पायी है। यह व्रत प्रत्येक महीने की शिवरात्रि (चतुर्दशी) कृष्ण पक्ष को होता है, किन्तु माघ के महीने में इसको करना अति आवश्यक है। इसी प्रकार फाल्गुन मास की चतुर्दशी भी है। यह शिवरात्रि सर्वोत्तम कही गयी है। आधी रात तक जो तिथि हो, वही शिवरात्रि व्रत के लिए उत्तम है। शिवरात्रि व्रत करके उसी दिन पारण करे तो उत्तम है, किन्तु बड़े भाग्य से उसी दिन 'पारण' मिलता है। चतुर्दशी न मिले तो अमावस्या को भी पारण कर सकते हैं। जो मनुष्य दुर्लभ शिवरात्रि व्रत को नहीं करता, वह घोर नरक में जाता है। शिवरात्रि व्रत करने वालों को देखकर यमराज भी भयभीत रहते हैं। जो शिवरात्रि का व्रत करता है, वह शिव का गण है।

'शिव जी के चारों प्रहर की पूजा विधि'

हे नारद ! अब मैं चारों प्रहरों की पूजा का वर्णन करता हूँ, सुनो— प्रातःकाल उठकर नित्य कर्म करे और अति प्रसन्नता से शिवजी के मन्दिर में जाकर स्तुति करे। पहले परम पवित्रता के साथ जल हाथ में लेकर इस प्रकार संकल्प करे—हे शिवजी मैं आपका व्रत करूँगा, वह पूर्ण हो और कोई उसमें विघ्न न हो। फिर पूजन सामग्री एकत्र करके प्रसिद्ध

शिवलिङ्ग के समीप जाय, शिवजी के दक्षिण या पश्चिम की ओर आसन लगाकर पूजा की सामग्री रखे। पवित्रता के साथ तीन बार आचमन करके पूजा करे। यथा विधिमन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे। नाच-गान आदि के साथ स्तुति करे और शिवजी का मन्त्र जपे। यथाविधि प्रणाम करे। मन्त्रों के साथ पार्थिव पूजा भी करे। जो मनुष्य जिस देवता का पूजन करता है, उस देवता के पूजन के बाद पार्थिव पूजा करे। पुनः स्थापित शिवलिङ्ग का पूजन करे। शिवरात्रि की महिमा स्वयं पढ़े। स्वयं नहीं पढ़ पावे तो दूसरे से सुने। कथावाचक की नाना विधि से पूजन करे। अच्छे-अच्छे नैवेद्य शिवजी को भोग लगाकर चारों प्रहर में संकल्प करके शिवलिङ्ग की पूजा करें। रात्रि जागरणपूर्वक उत्सव करे। सवेरे भी स्नान करके पूजन करे, गाल वजावे, नाचे, बारम्बार दण्डवत करे और स्तुति करे। सिरझुकावे विनती करे कि मैंने शिवरात्रि व्रत किया, यथा शक्ति उद्योग किया तथा प्रेम से आपमें मन लगाया है, मुझे सेवक जानकर प्रसन्न होकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें। शिवजी को बिल्वपत्र अति प्रिय है, अतः अधिक से अधिक मात्रा में चढ़ावे। ऐसा करते हुए शिवजी को पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। ब्राह्मणों को दान दे। शिवभक्तों को, द्विजों को तथा यति सन्यासियों को उत्तमोत्तम भोजन करावे। शक्ति के अनु-सार दक्षिणा (विदाई) से प्रसन्न करे। शिवजी का ध्यान करते हुए ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर पूर्ण होने पर स्वयं भी भोजन करे। धनवान् हो तो अधिक से अधिक धन खर्च करे। इस प्रकार से प्रतिमास शिव-रात्रि का पूजन तथा उद्यापन करना चाहिए।

शिवरात्रि व्रत का उद्यापन

शिवरात्रि व्रत के उद्यापन करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। शिव-रात्रि व्रत चौदह वर्ष तक बराबर करके तब विशेष रूप से उद्यापन करे। त्रयोदशी के दिन संयमपूर्वक रहे, चतुर्दशी को अन्न जल रहित व्रत करे। शिवजी का दिव्य धाम (मण्डल) जिसको 'गौरी तिलक' कहते हैं, उसे

बनावे, वहाँ पर लिङ्गतोभद्र तथा सर्वतोभद्र बनावे। आठ कलशों को स्थापित करे, फलफूल तथा वस्त्रों से पूर्ण करे, उसके मध्य में एक स्वर्ण कलश रखे, जिसके ऊपर शिव-पार्वती नन्दीश्वर की स्वर्ण की प्रतिमा वनाकर स्थापना करे। शक्ति के अनुसार मूर्ति बनावे, दीप जलाकर दाहिनी तरफ रखे। प्रसन्न मन से रात्रि भर जागरण करे, चारों प्रहरों में पूजा करे। ब्राह्मणों की भी पूजा करके प्रसन्न करे। भोजन करावे, वस्त्र आभूषणों का दान करे। विशेष पूजा आचार्यजी का करे। उन्हें गोदान दे। तीनों सुवर्ण की मूर्तियाँ अन्य सामग्री सहित देकर दण्डवत् प्रणाम करे। शिवजी को पुष्पाञ्जलि चढ़ा कर स्तुति सहित दण्डवत् प्रणाम करे। फिर परिवार सहित ब्राह्मणों की आज्ञा से व्रत पूर्ण करके भोजन करे।

महत्त्व जाने बिना भी शिवरात्रि व्रत करने का फल

प्राचीनकाल में एक व्याध हुआ, उसका नाम निषाद था। वह बड़ा हिंसक था। परिवार सहित रहता था। वनके जीवों को मारता था, धन चोरी करके ले आता था। इस प्रकार बहुत समय बिता। एक दिन घर में भोजन की कोई सामग्री न होने से उसके परिवार ने क्षुधा से व्याकुल होकर कहा कि हमारे लिए भोजन सामग्री ले आओ। यह सुनकर व्याध धनुष बाण लेकर वन की ओर गया। उस दिन महाशिवरात्रि थी। इस व्रत को निषाद नहीं जानता था। उस दिन निषाद को कोई शिकार नहीं मिला। जब रात्रि हुई तव वह दुःखी होकर सोचने लगा अब मैं घर नहीं जाऊँगा। रात्रि में जलाशय के किनारे जल पीने के लिये कोई जन्तु अवश्य आयेगा, उसको मार करके घर ले जाऊँगा। सब परिवार को भोजन कराऊँगा। यह शोचकर वह निषाद एक विल्व के वृक्ष पर चढ़ गया और छिप कर हरिणों की प्रतिक्षा करने लगा। उस रात्रि के प्रथम प्रहर में एक हरिणी प्यासी हुई वहाँ जल पीने आई। निषाद ने तुरन्त उसको मारने के लिये धनुष पर बाँण चढ़ाया। उस समय उस निषाद के शरीर के रगड़ से विल्व के पत्र और शीशी का जल, शिवलिङ्ग में गिरा।

भाग्यवश शिवरात्रि के प्रथम पहर की पूजा हो गयी। निषाद के बहुत जन्मों के पापों का नाश हो गया। उधर हरिणी ने निषाद को देखा और बोली—तुम क्या कह रहे हो निषाद! उसने कहा—मेरे परिवार भूख से पीड़ित हैं अतः तुमको मारकर तेरे मांस से उनको तृप्त करूँगा। यह सुन कर हरिणी चिन्तित हुई और बोली—निषाद! मेरे मांस से तेरा मनोकर पूर्ण होता है तो मैं धन्य हूँ। दूसरों के प्राण बँचाने के बराबर अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। मेरे मांस से तुम्हारा परिवार निश्चय तृप्त होगा, पर मेरी एक प्रार्थना है, मेरे घर में छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनको मैं अपनी बहिन को सौंप दूँगीं, तब मैं तेरे पास आऊँगी, तुमसे प्रतिज्ञा करके जाती हूँ। अवश्य ही आऊँगीं। सत्य के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है, यदि मैं न आऊँ तो विश्वासघात का पाप लगे। शिवजी का व्रत त्याग करने का पाप लगे। इस प्रकार शपथ खाकर हरिणी चुप हो गयी। निषाद को विश्वास हो गया, उसे जाने का वचन दे दिया। हरिणी जल पीकर अपने घर गई। संयोग से हरिणी की बहिन अपनी बहिन को ढूँढते-ढूँढते वहाँ पर आ पहुँची, उसे देखकर निषाद ने फिर धनुष पर बाँण चढ़ाया उस वक्त निषाद के देह के स्पर्श से विल्वपत्र तथा जल शिवलिङ्ग के ऊपर गिर पड़े, इससे दूसरे प्रहर की शिवजी की पूजा पूर्ण हुई। इससे निषाद के बहुत से पाप नष्ट हो गये। हरिणी ने कहा हे निषाद तुम क्या कर रहे हो। निषाद ने पहले के समान उत्तर दिया। हरिणी डर गयी और उससे बोली हे निषाद! मेरे बड़े भाग्य हैं, क्योंकि यह शरीर नाशवान है, यदि इससे दूसरे को सुख मिले तो इससे अधिक क्या है लेकिन अपनी छोटी बच्ची को पति के हाथ सौंपकर आऊँगी इस तरह बहुत सौगन्ध खाकर खड़ी हुई। तब निषाद ने जाने दिया। हरिणी प्रसन्न होकर पानी पीकर अपने घर गयी। निषाद ने जागरण में दो पहर रात बिता दिया, इधर हरिणी घर नहीं आई तब हरिण चिन्तित हुआ प्यास से व्याकुल होकर स्वयं ही चला, जब नदी के किनारे पहुँचा तो निषाद ने

फिर अपने धनुष पर वाँण चढ़ाया इस मुद्रा में निषाद को देखकर हरिण बोला निषाद यह क्या कर रहे हो ! निषाद ने पहले के समान ही उत्तर दिया उसे सुनकर हरिण बोला, मेरे धन्य भाग्य हैं तुम्हारे परिवार को तृप्त करने वाला हूँ जो मनुष्य दूसरों को लाभ नहीं पहुँचाते, उनको संसार में जन्म लेना व्यर्थ है। किन्तु मेरे घर पर छोटा बच्चा है मैं उसे माँ को सौंप दूँ तब तुम्हारे पास आजाउँगा। परन्तु निषाद ने कहा तुम्हारे जैसे और भी बहुत आये थे उन्होंने मुझे धोखा दिया मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हरिण बोला कि मैं कभी झुठ नहीं बोलता हूँ क्योंकि संसार में सत्य का पद बड़ा है। मैं सपथ करता हूँ, तुम्हारे पास अवश्य आ जाऊँगा। नहीं आऊँगा तो मुझे बड़े-बड़े हत्यायें करने का पाप लगे। यह सुनकर निषाद बोला अच्छा जाओ शीघ्र लौटना, हरिण पानी पीकर अपने घर गया। वहाँ हरिणियाँ अपने बच्चों के साथ एकत्रित होकर अपना-अपना वृतान्त कहकर दुःखी हुई। सत्य तथा धर्म से डरकर सबसे पहले प्रतिज्ञा करके जो हरिणी आइ थी वह अपने पति से बोली, मैंने पहले प्रतिज्ञा की थी इसलिये मैं निषाद के पास जाऊँगी तुम दोनों घर में रहकर बच्चों का पालन पोषण करना। तब दूसरी हरिणी ने कहा, मैं व्याध के पास जाऊँगी, क्योंकि पहली स्त्री घर की स्वामीनी होती है। यह सुनकर हरिण बोला मैं ही स्वयं व्याध के पास जाऊँगा, अपने मांस से उस व्याध के परिवार को तृप्त करूँगा। किन्तु दोनों हरिणियों ने कहा कि हम घर में 'राँड' बनकर नहीं रहना चाहती हैं। धिक्कार है जो विधवा होकर घर में रहती हैं। सब परिवार लड़ते-झगड़ते निषाद के पास चले पीछे से उनके बच्चें भी चले। क्योंकि रक्षक के विना वे कैसे रह सकते थे। (जो माता-पिता की दशा होगी वही हमारी भी होगी) वधिक ने देखा सभी हरिणों का समूह एक साथ आ रहा है वह प्रसन्नता से पहले की तरह धनुष पर वाँण का अनुसन्धान करने लगा जिससे पहले की भाँति वेलपत्र तथा जल शिवजी के लिङ्ग के उपर गिर पड़े और चौथे प्रहर की पूजा भी पूर्ण हो गयी। इससे व्याध के सम्पूर्ण पाप नष्ट गये। तब दोनों हरिणियों और बच्चों

के साथ हरिण बोला हे निषाद ! अब मेरे शरीर को शुद्ध करके हमको मारो। किन्तु व्याध के पाप शिवजी के पूजन से जल चुके थे उसकी बुद्धि शुद्धि हो गयी उसे दया आयी। वह बोला।

हे मृगों के समुदाय ! यद्यपि पशुओं की बुद्धि नहीं होती पर तुम सब धन्य हो, अपने शरीर के नष्ट होने पर भी दुसरे को भलाई करने को तैयार हो और मैंने मनुष्य होकर भी अपना जन्म जीवों का वध करने में बिताया। ऐसा घोर पाप करके परिवार का पालन किया करता हूँ। न जाने मैं किस अवस्था को प्राप्त होऊँगा। मैंने कोई धर्म नहीं किया। ऐसा कहते हुए व्याधने चिन्ता की आँसु बहाई और बोला। हे शुद्ध हरिण, हरिणियों ! अब तुम लोग सब घर जाओ, तुम धन्य हो तुम्हारा घर भी धन्य है। तुम सभी अति उत्तम हो। व्याध ऐसा कह ही रहा था उसी समय शिवजी परम प्रसन्न होकर वहाँ प्रकट हुए और अपने करकमलों से व्याध का हाथ पकड़ कर कहे तुमसे मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम्हे जो चाहिये वह वर माँगो। तुमने शिवरात्रि व्रत किया है, तुम्हारे सब पाप नष्ट हो गये। तुम मेरा भक्त हुआ। भगवान् शिव की यह बात सुनकर व्याध जीवन मुक्त हुआ और शिवजी के चरणों में गिर पड़ा। उसके मुख से इतना ही शब्द निकला मैंने सब कुछ पाया। यह सुनकर शिवजी अति प्रसन्न हुए। उसका नाम 'स्कन्द' रखा, बहुत से वरदान दिये और कहा तुम अपने कुल के राजा होओगे शृङ्गवेरपुर को अपनी राजधानी बनाओगे और राज्य करोगे। तुम्हारे बहुत सन्तान होगें उनकी देवता भी प्रशंसा करेगें। मेरे भक्त श्री रामचन्द्रजी तुमको सेवक जानकर तुम्हारे घर पधारेंगे, तुम्हें यश देगें। तुम मेरा भजन कभी मत भूलना। तुमको दुर्लभ मुक्ति मिलेगी। इतनी बातों को सुनकर हरिण के समूह भी मृग योनि का परित्याग करके देवताओं का रूप धारण कर, अशुपाश से मुक्त होकर दिव्य लोक में चले गये। शिवजी भी अन्तर्धान हो गये। और लिङ्ग के रूप में वही 'व्याधेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज भी

अर्बुद गिरि में वह लिङ्ग प्रसिद्ध है। उसके दर्शन तथा पूजन से भक्ति और मुक्ति मिलती है। निषाद ने श्रीराम का दर्शन तथा शिवजी का दर्शन करके वहुत काल तक सुख भोगा और अन्त में शिवजी का सायुज्य प्राप्त कर लिया। अनजान में शिवरात्री व्रत करने से अनायास ही मोक्ष मिला, विना ज्ञान का मोक्ष मिलना असम्भव है। जो श्रद्धा भक्ति के साथ शिवरात्री व्रत करेगा उनको तो कहना ही क्या है। जो नरनारी इसे पढ़ेगें सुनेगें, दोनों लोक में सुखी होगें।

गुणनिधि का कुबेर होना

ब्रह्मा जी ने कहा हे नारद जी! अब गुणनिधि नामक व्यक्ति ने शिवरात्री व्रत करके जिस प्रकार आनन्द पाया है उसे सुनो—द्रुपदपुरी में गंगा जी के तट में कम्पिला नाम का अति पवित्र स्थान है। वहाँ शिव जी रामेश्वर के नाम से तथा शिवा काली के नाम से विराजते हैं। वहाँ यज्ञ करने वाला यज्ञदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। वह शिवजी का बड़ा भक्त था। राजा ने उसे बहुत धन दे रखा था। उसकी स्त्री भी बड़ी धर्मात्मा थी। उनका एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'गुणनिधि' रखा गया था। यत्रदत्त ने उसे धर्म तथा विद्या की शिक्षा दी और विवाह कर दिया। परन्तु थोड़े समय में ही गुणनिधि बुरी संगति में पड़ गया। और दुःष्ट हो गया। वेद तथा पुराणों के सब कर्म छोड़ दिया। जूवा खेलकर पिता की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दिया। पर उसकी माता गुणनिधि के दोषों को छिपाये रखती, माता ने सरलता से उसे उपदेश देकर अच्छे काम में लगाना चाहा वह नहीं माना। वह बड़ा दूराचारी हुआ। अपनी स्त्री को छोड़कर पराई स्त्री के सेवन में रत रहता था। एक दिन यज्ञदत्त ने अपनी अङ्गुठी दूसरे के हाथों में देखकर उसे पूछा तो जुवारी ने कहा मैंने तेरे पुत्र से जूवा में जीता है। तुम्हारा पुत्र जुवाड़ी है। यह सुनकर यज्ञदत्त को बड़ा दुःख हुआ। घर में जाकर स्त्री से पूछा किन्तु पुत्रस्नेह वस स्त्री ने कुछ नहीं कहा। तब यज्ञदत्त ने कुशोदक लेकर संकल्प

पूर्वक अपने कुपुत्र को त्याग दिया। परन्तु स्त्री ने पति से बहुत अनुनय-विनय किया, पुत्र को फिर घर में रखना स्वीकार कराई। गुणनिधि ने यह बात सुना तो, रोता-चिल्लाता घर से भागा। वह चलते-चलते सूर्यास्त तक चला और बैठ गया। संयोग बस उसदिन शिवरात्री का दिन था।

यह व्रतों का शिरोमणि है। उस दिन शिवजी का एक भक्त शिवरात्रि व्रत धारण किये अनेक भक्तों को साथ लिये पूजन की सामग्री सहित उस रास्ते से निकला। गुणनिधि भूखा था। उन भक्तों के पास मधुर मिष्ठान्नों को देखकर उनका पीछा करता हुआ चुराने का प्रयास करने लगा। शिवजी के भक्त ने एक मन्दिर में जाकर षोडशोपकार से शिवजी की पूजा की। वह सब गुणनिधि छिपकर देख रहा था। पूजा के उपरान्त शिवजी के भक्तगण ऊँघा गये। उसने वस्त्र फाड़कर एक वत्ती बनाया और नैवेद्य को देखकर शिवजी का नैवेद्य चुराकर भागना चाहा, चलते वक्त किसी के पैर से धक्का लगने से उस व्यक्ति ने शोर मचाया—चोर है, नैवेद्य चुराकर भाग रहा है, उसे पकड़ो। यह सुनकर भक्तगण तुरन्त पहुँच गये और उन्होंने गुणनिधि को बाणों के प्रहार से मार डाला। गुणनिधि पूर्व जन्म के पूण्य से शिवनिर्माल्य खाने से बच गया। यमराज के गण उसी वक्त आ पहुँचे। गुणनिधि को बाँधकर यमराज के पास ले जाना चाहते थे। शिवजी ने अपने गणों को आज्ञा दिया कि गुणनिधि को यमदूतों से छुड़ाकर मेरे पास ले आओ, क्योंकि उसने शिवरात्रि व्रत किया है, मेरी पूजा आँखों से देखी है, मेरा निर्माल्य खाने से बच गया। मैंने उसे अपना भक्त बना लिया है। अब वह नरक में नहीं जा सकता। यह व्रत मुझे अतिप्यारा है। जो शिवरात्रि के दिन मेरी पूजा देखता है, वह मुझे सबसे प्रिय है। उसने मुझे दीप दिखलाया है, अतः वह कलिंग देश का राजा होगा और फिर मेरे पास आयेगा। वह कुबेर होकर मेरा मुख्य मित्र होगा और आनन्द करेगा। शिवजी के गण यमदूतों के हाथ से गुणनिधि

को छीनकर शिवजी के पास ले गये। वह बाद में कलिंगनरेश होकर 'दम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनजाने में शिवरात्रि व्रत करने का फल यह है।

पुनः शिवरात्रि महात्म्य बताते हैं—प्राचीन काल में सौमणि नाम की एक ब्राह्मण की कन्या थी। उसके पिता ने एक ब्राह्मण कुमार के साथ विवाह कर दिया। दोनों ने नाना प्रकार के भोग भोगे, किन्तु उसका पति युवा अवस्था में ही मर गया। पति के मरने के वाद सौमणि कुछ समय तक रही, किन्तु वाद में कामवेदना के सताने से पुंश्चली हो गयी। जाति के लोगों ने उसे अलग कर दिया। वह स्त्री स्वतन्त्र होकर घूमने लगी। एक दिन एक शूद्र उसको अपनी स्त्री बनाकर अपने घर ले गया। सौमणि उसके साथ मांस और मदिरा खाने-पीने लगी। एक दिन उसने जहाँ वकरे तथा बछड़े बाँधे थे, वहाँ जाकर एक बछड़े को मारा। रात्रि होने के कारण उसने कुछ भी नहीं जान पाया। पीछे पछताने लगी और मुख से शिव-शिव कही। फिर क्षणभर वाद उस मांस को पकाकर खा लिया। उस स्त्री ने मरने के बाद कुछ दिन नरक में रहकर चाण्डाल के घर जन्म लिया। वह जन्म से ही अन्धी थी। माता-पिता भी मर गये। भाई-बन्धु न होने के कारण मारे-मारे फिरने लगी। कुष्ठ हो गया। कष्ट के साथ दिन काटने लगी। जब फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी (महाशिवरात्रि) को गोकर्ण क्षेत्र में मेला लगा। शिवजी का दर्शन करने लोग जाने लगे तो वह भी उनके पीछे-पीछे मांगती खाती वहाँ पहुँच गयी। वहाँ दोनों हाथ फैलाकर भीख मांगने लगी। एक शिवभक्त ने एक मुट्ठी विल्वपत्र उस अन्धी स्त्री के हाथों में फेंक दिया। उस अन्धी ने यह खाने योग्य नहीं है, समझकर फेंक दिया। संयोगवश वह विल्वपत्र शिवलिंग के ऊपर जा गिरा। उस दिन शिवरात्रि थी। शिवजी ने जाना कि उस अन्धी ने मेरी पूजा की है। वह रातभर भीख मांगती रही। किसी ने कुछ नहीं दिया, अतः उसने निर्जला व्रत कर लिया और जागरण भी। वह स्त्री फिर अपने देश लौटी और मर गयी। शिवजी ने उसे लाने के

लिए अपने गणों को विमान लेकर भेजा। शिवजी के गणों ने विमान पर चढ़ाकर उसे शिवजी के पास पहुँचाया। वह पार्वतीजी की सखी हो गयी। शिवरात्रि व्रत महान् फल देने वाला है। कार्यों को सिद्ध करने वाला है। इस व्रत के करने से मित्रसहराजा की ब्रह्महत्या छूट गयी। इसके महात्म्य श्रवण से और कथन से सब पापों से मुक्ति मिलती है। शिवरात्रि व्रत की महिमा मुक्ति प्रदान करने वाली है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को रात्रि में जागरण, शिवजी का दर्शन, पूजन तथा विल्व पत्र समर्पण अत्यधिक फलदायक होता है। दस हजार वर्ष गंगास्नान के वराबर शिवरात्रि व्रत का फल हैं। संसार में जितने पवित्र दिन हैं, वे सब शिवरात्रि व्रत में स्थित हैं। सौ यज्ञ के समान शिवरात्रि व्रत है। व्रत के साथ जागरण करने से व्रत पूर्ण फल देता है। जो मनुष्य एक भी वेलपत्र से शिवजी की पूजा करता है, उसके समान मुक्ति देनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है।

इसपर एक इतिहास कहते हैं। एक वेलपत्र शिवजी को चढ़ाने से सब पाप दूर होते हैं। 'मित्रसह' नाम का बड़ा धर्मात्मा एक राजा था। उसकी स्त्री मदयन्ती राजा नल की स्त्री दमयन्ती के समान पतिव्रता थी। एक दिन राजा सेना को साथ लेकर शिकार खेलने के लिए वन में गया। उसने वहुत से जीवों को मारा। राजा वहुत दिन तक वन में रहा और कमठ नामक राक्षस को मारा। उस राक्षस के भाई को बड़ा दुःख हुआ। वह भाई का वदला लेने के लिए मनुष्य का रूप धारण कर उसी राजा का सेवक वन गया। राजा घर लौटा तो अपने गुरुजी को निमन्त्रण दिया। उस राक्षस के भाई ने भोजन में नरमांस को छिपाकर मिला दिया। गुरुजी ने जान लिया और राजा को शाप दिया—तुम बारह वर्ष तक के लिए राक्षस हो जाओगे। राजा ने भी शाप देना चाहा, परन्तु रानी ने उसे रोक दिया। शाप का जल अपने पैर पर छोड़ा था, अतः उस राजा को कल्माषपाद कहने लगे। वह राजा राक्षस होकर बहुत से जीवों को खाने लगा। एक दिन उसने एक नवयुवक ब्राह्मण को मारा,

जो अपनी स्त्री के साथ भोग रहा था। उसकी ब्राह्मणी ने भी शाप दिया कि तुम भी अपनी स्त्री के साथ भोग करेगा तो मर जायेगा। ब्राह्मणी सती होकर परलोक सिधारी। बारह वर्ष के वाद वह राजा घर गया। उसकी स्त्री ने प्रसंग करने से रोका। वह घर छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए चला गया। जनकपुर में गौतम मुनि से भेंट करके कहा—मुझे ब्राह्मण का शाप लगा है, कैसे छूटेगा? तब मुनि ने कहा—तुम शिवजी की उपासना करो। जहाँ गोकर्ण क्षेत्र में 'महावल' नाम का शिवलिंग है, उसका पूजन करो। शिवरात्रि व्रत करो। राजा मित्रसह ने वैसा ही किया। शिवरात्रि व्रत के प्रभाव से राजा ने सब प्रकार के सुख भोगे। अन्त में शिवजी का गण हो गया। इस चरित्र को प्रतिदिन सुने और सुनावे तो उसकी २१ पीढ़ी तर जाती है। यह इतिहास परम पवित्र है।

और भी शिवरात्रि व्रत का महात्म्य कहते हैं—यह व्रत अनजान में हो जाय तो भी उत्तम फल देता है। प्राचीन काल में किरात देश में विकर्ष नाम का एक राजा था। वह कुकर्मी था, परन्तु शिवरात्रि का व्रत करता था। उस दिन बड़ा उत्सव करता था। दान भी देता था। उसकी रानी का नाम कुमुद्वती था, वह बड़ी सुशीला थी। उसने अपने पति से पूछा—तुम कुकर्मी, दुराचारी, परस्त्रीगामी, सर्वभक्षी होते हुए भी कैसे शिवभक्ति में मन लगाते हो, मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है? तुमने यह कहाँ से सीखा है, मुझे बताओ। राजा ने हँसते हुए कहा—मैं पूर्वजन्म में कुत्ता था। पम्पापुर में घूमा करता था। भूख और प्यास से दौड़ते-दौड़ते थक गया था। एक दिन शिवजी के भक्तों ने शिवजी का पूजा की। मैं भोजन की इच्छा से खड़ा होकर देखने लगा। उन्होंने मुझे मारकर भगाया, परन्तु मैं घूमकर आ गया। तब एक व्यक्ति ने तीर से मारा, मैं मर गया। शिवजी को देखते हुए मैं मरा, इसलिए राजा के घर पैदा हुआ। मैंने चतुर्दशी को शिवजी की पूजा तथा दीपदान देखा था। इस कारण मैं तीनों काल की बातों को जानता हूँ। मैं सर्वभक्षी हूँ, यह पूर्वजन्म का संस्कार है। इसे मिटाना बड़ा कठिन है। मैं शिवजी की

पूजा करता हूँ, अतः मेरे कर्म शुभ होते हैं। हे रानी ! तुम भी शिवजी की पूजा करो। यह सुनकर रानी को शिवजी के पूजा में बड़ी श्रद्धा हुई। उसकी रानी ने कहा—हे पतिदेव ! मैं भी पूर्वजन्म की बात जानना चाहती हूँ, कृपा करके बता देवें।

यह सुनकर राजा ने रानी से कहाँ तुम पूर्व जन्म में कबुतरी थी एक दिन तुमने मांस का टुकड़ा पाया उसे लेकर आकश में उड़ी, एक गिद्ध ने देखा और पीछे से झपटा उसके मार से तुम एक शिवालय के शिखर में गिरकर मर गयी। मरते समय में शिवजी का लिङ्ग देखा था, इसी पुण्य से तुम इस जन्म में मेरी रानी हुई। यह सुनकर शिवजी की भक्ति बढ़ी और रानी ने कहा राजन् तुम अपना और मेरा भविष्य भी बताओ। राजा बोला कि हम दोनों का भविष्य सुनो। हम दूसरे जन्म में सिन्धु देश के राजा होगें। तुम राजा संजय की पुत्री होगी!, फिर मेरे साथ विवाह होगा। तीसरे जन्म में हम सौराष्ट्र राजा के पुत्र होंगे तुम कलिङ्ग देश के राजा की पुत्री होगी मेरे साथ विवाह होगा। चौथे जन्म में हम गान्धार देश के राजा होंगे। तुम मगध देश के राजा की पुत्री होगी तुमसे मेरा विवाह होगा। पाँचवे जन्म में हम उज्जयन के राजा होंगे तुम राजा दशारण्य की पुत्री होगी पुनः तुमसे हम विवाह करेगें। छठे जन्म में हम आनर्त देश के राजा होंगे तुम ययाति के कुल में जन्म लोगी, हम तुमसे विवाह करेगें। सातवें जन्म में हम पाण्डच देश के राजा पद्मवर्ण होंगे, तुम राजा विदर्भ के घर जन्म लेकर सुमती नाम से प्रसिद्ध होगी। तब तुमको स्वयंवर में जीतकर तुमसे हम विवाह करेंगे। इस प्रकार हम दोनों शिवजी की पूजा में लगे रहेंगे। भोगविलास से युक्त, सन्तान से सम्पन्न होंगे, फिर पुत्र को राज देकर वनमें जाकर अगस्त्य मुनि से ज्ञान प्राप्त करके शिव लोक में जाँयेंगे। शिव के गणों में गिने जायेंगे। बहुत काल तक शिवजी का व्रत करके समय बिता कर सातवें जन्म में मुक्ति पायेंगे।

अथ प्रदोष व्रत महात्म्य

प्रदोष व्रत शिवजी को अति प्रिय है। वे स्त्री-पुरुष धन्य हैं, जो इस व्रत को करते हैं। दोनों पक्ष की त्रयोदशी को निर्जला व्रत करे। स्नानादि से निवृत्त होकर शिव की पूजा करे। उस समय कोई संसार का कार्य न करे। जब तीन घड़ी दिन रहे तब शक्ति के अनुसार स्नान कर मौन होकर सन्ध्या करके शिवजी का ध्यान करके, शिवजी का पूर्ण पूजा करे, प्रदोष काल में शिव पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन दे। दान-दक्षिणा भी दे; आज्ञा लेकर स्वयं हविष्यान्न (खीर) का भोजन करे। यह शिवजी की पूजा सब पापों का नाश करने वाली है। प्रदोष में शिवजी की पूजा करने से ब्रह्महत्यादि का पाप भी नष्ट हो जाता है जो प्रदोष व्रत करके भोजन करते हैं वे दोनों लोकों में आनन्द का भोग करते हैं। उनपर आपत्ति कभी नहीं आतो। इसपर एक विचित्र कथा का वर्णन है जिससे शिवजी की भक्ति बढ़ती है। प्राचीन काल में उज्जयिनी का राजा चन्द्रसेन शिवजी का वड़ा भक्त हुआ। प्रेम से प्रदोष व्रत का उत्सव करता था। महाकाल शिवलिङ्ग का पूजन करता था। एक दिन 'मणिभद्र' नाम के शिवजी के गण ने प्रसन्न होकर एक चिन्तामणि दिया उस मणि में यह गुण था कि जो उसे देखे उसको पास रखे या स्पर्श करे या स्मरण करे तो वह मनुष्य आपदाओं से मुक्त हो प्रसन्न होता था। उसके स्पर्श से सब धातु सोना होते थे। उस रत्न के धारण से राजा सूर्य के समान तेजस्वी हुआ। सारी पृथ्वी के राजाओं को यह बात ज्ञात हुई और राजाओं ने उससे माँगा, पर उसने किसी को नहीं दिया। तब सभी राजाओं ने उसपर चढ़ाई कर दिया। उसकी राजधानी उज्जयिनी को चारों ओर से घेर लिया रात्रीभर राजधानी में शोक छाया था। सबेरे प्रदोष का व्रत था राजा ने महाकालेश्वर शिव का पूजन किया उसी समय एक स्त्री

पाँच वर्ष का लड़का गोद में लेकर वहाँ पर आयी। राजा का शिवपूजन देखकर जब वह स्त्री घर गयी तो उसके बालक को शिवजी के प्रति इतना अधिक प्रेम हुआ कि उसने भी एक शिला स्थापित करके जिस प्रकार राजा को पूजन करते देखा था उसी प्रकार वह बालक भी शिवजी की पूजा करने लगा। उसकी माँ ने भोजन करने के लिए बुलाया पर वह पूजा छोड़कर नहीं आया। तब उसकी माँ क्रोधकर लड़के का हाथ पकड़ कर घर की ओर खींचने लगी शिवलिङ्ग को दूर फेंक दिया। बालक हाय-हाय करके रोने लगा और मूर्छित हो गया। बालक ने उस मूर्छित अवस्था में एक रत्न का शिवलिंग देखा। शिवजी की महिमा जानकर उसने बहुत स्तुति की—हे प्रभो! मेरी माँ मूर्खा है, उसका अपराध क्षमा करें। ऐसा कहकर वह बालक घर गया तो देखा कि इन्द्रलोक के समान वह नगर हो गया था। वहाँ का मन्दिर मनोहर रत्नों से जड़ा था। उन सब मन्दिरों में उसकी माँ का मन्दिर सबसे सुन्दर था। उसके भीतर रत्नों की शय्या पर उसकी माँ सो रही थी। उसने माँ को जगाया। माँ ने यह चित्र-विचित्र मन्दिर देखा और बड़ी प्रसन्न हुई। बालक ने कहा—यह सब शिवजी की कृपा से प्राप्त हुआ है। राजा ने यह वृत्तान्त सुना, पूजा पूर्ण करके उस मन्दिर को देखने गया। देखकर परम प्रसन्न हुआ। राजा की उस बालक से मित्रता हुई। उसकी प्रशंसा की और सब राजाओं ने विरोध त्याग कर शिवजी की पूजा की। शिवजी की कृपा देखकर राजा से मित्रता की और अपने नगर को लौट गये। लौटते वक्त उस लड़के का दर्शन तथा मन्दिरों का दर्शन कर राजाओं ने बहुत सा भेंट दिया। स्वयम्भू लिंग का दर्शन दुर्लभ था। बालक को गोपों का राजा बनाया गया। उस वक्त श्री हनुमानजी ने भी सबको दर्शन दिया और उस बालक को गोद में उठा लिया, शरीर में हाथ फेरा। चन्द्रसेन को अभय वर दिया। प्रदोष व्रत के महात्म्य प्रकट करने के लिए शिवजी ने यह लीला की थी।

(बालक ने कृष्णपक्ष के चतुर्दशी शनिवार को शिवजी की पूजा की थी, अतः वह ऐसे पद पर पहुँचेगा, जो आठवें जन्म में नन्द नाम का

गोपों का राजा होगा। उसके घर विष्णु भगवान् का अवतार होगा)। आज से इस बालक का नाम 'श्रीकर' होगा। शिवजी के पूजा में भस्म, रुद्राक्ष आदि अवश्य लगाना चाहिये। प्रदोष काल में शिवजी की पूजा करना चाहिये। जो लोग प्रदोष काल में शिवजी की पूजा नहीं करते, वे लोग दरिद्र होते हैं। प्रदोष काल में शिवजी की पूजा छोड़कर और कुछ भी न करे। प्रदोष व्रत प्रारम्भ करके पूरा किये विना बीच में न छोड़े। छोड़ने से विपत्तियाँ आती हैं। उदाहरण के लिये—

विदर्भ देश में 'सत्यरथ' नाम का एक राजा था। उसने प्रदोष व्रत को छोड़कर शत्रु को मारा और उस दिन भोजन भी कर लिया। इस कारण उसको अन्य शत्रुओं ने आक्रमण करके मार डाला। उसकी रानी जंगल में भाग गयी। वह गर्भिणी थी, किसी तरह रात्रिभर भागकर एक तालाब के पास वैठ गयी। वहाँ शुभ लग्न में एक पुत्र को जन्म दिया। वह प्यास से व्याकुल होकर नदी के तट पर पानी पोने गयी, इतने में ही उसको मगर निगल गया। उसका नवजात शिशु रो रहा था। क्षुधा से व्याकुल था। उसकी दशा देखकर शिवजी को दया आयी। शिवजी की कृपा से वहाँ पर एक विधवा ब्राह्मणी आयी और वालक को अकेले देखकर चकित हुई। यह किसका वालक है, मैं नहीं जानती। तब शिवजी भिक्षुक का वेश धारण कर वहाँ आये और उस स्त्री से वोले— तुम संशय छोड़कर इस लड़के का पालन-पोषण करो, इससे तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा। यह पूर्वजन्म में राजपुत्र था। त्रयोदशी व्रत के दिन शिवजी की पूजा छोड़कर शत्रु का नाश किया। उसी अशुद्धता में भोजन किया था। इसी कारण इस प्रकार कष्ट पाया है। इसकी माँ ने अपने सौत को धोखे से मारा था, इसलिए उसे मगर ने खाया। तुम इस बच्चे को पालो। शिवरात्रि को शिवजी की पूजा करो या कराओ। इससे सब प्रकार के सुख; सम्पत्ति और आनन्द मिलेगा। अन्त में मुक्ति मिलेगी। ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। उस स्त्री ने वैसा ही किया।

(शिवपुराण)

रुद्राक्ष का महत्त्व तथा धारण का फल

ब्रह्माजी कहते हैं—हे नारद ! मैं तुमको रुद्राक्ष की महिमा सुनाता हूँ, जिसका वर्णन करने में देवता और ऋषि-मुनियों की जिह्वा थक जाती है। शिवजी को रुद्राक्ष अतिप्रिय है। रुद्राक्ष के दर्शन, जप तथा पूजन से सब प्रकार के पापों का नाश हो जाता है। एक समय सदाशिव ने संसार के कल्याण के लिए आँख वन्द करके दिव्यसहस्र वर्ष तप किया। जव उन्होंने आँख खोला तो दो जलविन्दु उनके नेत्रों से पृथ्वी में गिरे, उसी बिन्दु से दो रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हो गये। शिवजी की कृपा से भक्तों को मिले। ये रुद्राक्ष भारतवर्ष के हर एक प्रान्त में उत्पन्न होने लगे। अयोध्या, मथुरा, काशी, गौड़ तथा सह्यगिरि में अधिक पैदा हुए। इनके दर्शन से सब पापों का नाश होता है। सुख-शान्ति मिलती है। रुद्राक्ष चार रंग के होते हैं श्वेत, लाल, पीला और श्याम। चारो वर्णों के लोग क्रमशः इनको धारण करें तो उत्तम है। रुद्राक्ष धारण करने वालों को मद्य, मांस, लहसुन, प्याज इत्यादि का सेवन नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति मुक्ति और भुक्ति चाहते हैं, उनको उचित है कि पवित्रता के साथ रुद्राक्ष धारण करे। सभी भक्तगण, देवगण, मानवगण रुद्राक्ष को धारण करके वड़ा सुख पाते हैं। रुद्राक्ष धारण से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। रुद्राक्ष की माला सब मालाओं में श्रेष्ठ है। इसके धारण करने से मनुष्य को काल का भय नहीं होता। रुद्राक्ष सब देवताओं को प्रिय है। शंकरजी को तो अत्यन्त ही प्रिय है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवगण रुद्राक्ष को धारण करते हैं। आँवले के समान रुद्राक्ष सभी मनोरथों को पूर्ण करगे वाले हैं। सभी रुद्राक्ष श्रेष्ठ हैं, गुञ्जा के समान रुद्राक्ष सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं। जितने अधिक छोटे रुद्राक्ष होते हैं, उतने ही अधिक श्रेष्ठ हैं। धारण करने पर अधिक फल देते हैं।

जो रुद्राक्ष पुष्ट तथा मजबूत हों, चिकने हों, काँटेदार हों और मोटे हों, वे सब प्रकार के मनोरथों को देने वाले हैं। भक्तजनों के सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले हैं, जिसको कीड़ों ने खाया है। जिसमें काँटे नहीं हैं, छिद्रयुक्त हैं, फुटे-टूटे हैं, वे सब त्याज्य हैं। जो रुद्राक्ष शिवभक्तों का लाया हुआ हो, वही उत्तम है। अन्य लोगों का लाया हुआ मध्यम है। ब्रह्माजी ने कहा—जिस रुद्राक्ष को मैंने सर्वोपरि कहा है, उसे धारण करना चाहिये। उसको धारण करने वाले मनुष्य को शिव का स्वरूप समझना चाहिये। भक्तों को चाहिये कि आलस्य छोड़कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष धारण करे। जो जान-बूझकर बिना मन्त्रोच्चारण किये रुद्राक्ष धारण करता है, उसे सुख नहीं मिलेगा, दोष लगेगा। अज्ञानी हो तो कोई बात नहीं। भूत-प्रेत की बाधाएँ भी रुद्राक्ष धारण से मिट जाती हैं। अभिचार (जादू-टोना) भी रुद्राक्ष धारण से दुर हो जाते हैं। रुद्राक्ष को देखकर देवगण भी प्रसन्न रहते हैं। शिवजी तो रुद्राक्षधारी मनुष्य को देखकर परम प्रसन्न होकर हँसने लगते हैं। अनाचारी, पापाचारी, दूराचारी, कुकर्मी मनुष्य भी कुकर्म छोड़कर श्रद्धा.से रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूटकर परमपदलाभ करता है। रुद्राक्ष की माला से मन्त्रजप करे तो कोटिगुणा अधिक फल होता है। रुद्राक्षधारी मनुष्य की अकाल मृत्यु नहीं होती और मरण काल में शिवजी का ज्ञान प्राप्त होता है। श्रद्धापूर्वक रुद्राक्ष धारण करने से निश्चित ही मुक्ति होती है। जिस मनुष्य के शरीर में रुद्राक्ष और भस्म का त्रिपुण्ड्र हो मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करता हो, ऐसे मनुष्य को देखने से शिवजी के दर्शन का फल होता है। सभी वर्णाश्रम के लोग रुद्राध धारण कर सकते हैं। शूद्र भी श्रद्धा-विश्वासपूर्वक रुद्राक्ष धारण करे तो फल प्राप्त होगा। दिन में रुद्राक्ष धारण करने से रात के सब पाप नष्ट होते हैं तथा रात में धारण करने से दिन के सब पाप नष्ट होते हैं। जो मनुष्य त्रिपूण्ड्रधारी, रुद्राक्षधारी तथा जटाधारी है, वह नरक में नहीं जाता। ललाट में त्रिपुण्ड्र, गले में एक रुद्राक्ष और मुख में मञ्चाक्षर मन्त्र है, वह सभी

लोकों में पूज्य है। जो ऐसे वेश में है, वह कभी नरकगामी नहीं होता। जो स्त्री या पुरुष ऐसा वेश धारण करते हैं, वे शिवजी के प्यारे हैं। चाहे वे पापी क्यों न हों, वे परम पवित्र हैं।

रुद्राक्ष अनेक प्रकार के होते हैं। उनके गुण सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

विविध मुखों के रुद्राक्ष का महत्त्व

(१) एकमुखी रुद्राक्ष – शिवजी का स्वरूप ही है। उसके धारण करने से भक्ति और मुक्ति दोनों ही मिल जाते । दर्शन से ब्रह्महत्या आदि पाप दूर होते हैं, सब उपद्रव शान्त होते हैं, सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। जिसने एक मुखी रुद्राक्ष पाया, वह बड़ा भाग्यशाली है। वह पवित्र तथा पापरहित है। (२) दो मुखी रुद्राक्ष—गौरीशंकर का प्रतीक है। इसके धारण से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा गोवध का पाप तत्काल छूट जाता है। घर में सब प्रकार के सुख-साधन उपलब्ध होते हैं। (३) तीन मुखी रुद्राक्ष—अग्नि का प्रतीक है। इसके धारण करने से स्त्री वध का पाप कट जाता है, विद्या तथा धन की प्राप्ति होती है। तीन दिन में आने वाला ज्वर नष्ट हो जाता है। (४) चार मुखी रुद्राक्ष—यह ब्रह्मा का स्वरूप है। इसके धारण से बड़ा आनन्द मिलता है और नर वध का पाप नष्ट हो जाता है। इसके दर्शन-स्पर्श से चारों पुरुषार्थ सुलभ हो जाते हैं। (५) पाँच मुखी रुद्राक्ष—शिव का स्वरूप है। इसके धारण करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों ही मिल जाते हैं। सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। भोग और मोक्ष दोनों ही सुलभ हो जाते हैं। (६) छः मुखी रुद्राक्ष—स्कन्द (षडानन) का प्रतीक है। इसे दाहिनी भुजा में धारण करने से ब्रह्महत्या भी छूट जाता है। सुख, शान्ति और सन्तान की वर्षा करता है। (७) सात मुखी रुद्राक्ष—महासेन या अनन्त का प्रतीक है। इसके धारण करने से निर्धन धनी, निर्बल बली तथा राजा के तुल्य होता है। सब पापों से छूट जाता है। (८) आठ मुखी रुद्राक्ष—बटुक भैरव

का प्रतीक है। इसके धारण करने ने आयु बढ़ती है और अन्त में शिवजी मुक्ति प्रदान करते हैं। (९) नौ मुखी रुद्राक्ष—भगवती दुर्गा का प्रतीक है। इसे दाहिनी भुजा में धारण करने से ब्रह्मा के समान सबका स्वामी होकर शक्तिवान होता है और सब पापों से शुद्ध हो जाता है। (१०) दस मुखी रुद्राक्ष—जनार्दन का प्रतीक है। इसके धारण से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। कहीं किसी से नहीं मारे जाते। (११) ग्यारह मुखी रुद्राक्ष—एकादश रुद्र का प्रतीक है। इसके धारण करने से सर्वत्र विजयी होता है। (१२) बारह मुखी रुवाक्ष—सूर्य का प्रतीक है। इसे शिखा में धारण करने से सब प्रकार के रोग दूर होते हैं। दोनों लोकों में सुख मिलता है। (१३) तेरह मुखी रुद्राक्ष—विश्वेदेव का प्रतीक है। इसके धारण करने से सब कार्य की सिद्धि होती है। (१४) चौदह मुखी रुद्राक्ष—इसको ललाट में धारण करने से किसी प्रकार का कष्ठ नहीं हो सकता और सब पापों से छूट जाता है।

सभी प्रकार के रुद्राक्ष की महिमा अनन्त है। माला बनाकर धारण करे तो मोक्ष भी मिलता है। सौ दाने की रुद्राक्ष की माला बनाकर धारण करे तो मोक्ष अवश्य मिलेगा। १४० दाने की माला आरोग्य प्रदान करती हैं। ३२ दाने की माला से धन की प्राप्ति होती है। १५ दाने की माला अभिचार के काम में आती है। १०८ दाने की माला सब कार्यों को सिद्ध करती है। अन्य प्रकार की माला भी एक-एक कार्य को सिद्ध करती है। जैसे पुत्रजीवा की माला पुत्रप्रद, मणि की माला धनप्रद, मोती की माला भाग्य को बढ़ाती है। कुश की माला पापनाशक, सोने-चाँदी की माला सुन्दर मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। स्फटिक की माला सुन्दर गति तथा धन, पुत्र, मान-सम्मान, सुख-शान्ति एवं वशीकरण की प्राप्ति कराती है। (स्फटिक के शिवलिंग का पूजन करने से मोक्ष तथा धनादि वैभव की प्राप्ति कराता है।), परन्तु रुद्राक्ष की माला अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्त कराती है। रुद्राक्ष की एक दाने की माला का जप अन्य

मालाओं से करोड़ गुना अधिक फल प्रदान करती है। रुद्राक्ष को महिमा स्वयं शारदा भो वर्णन नहीं कर सकतीं।

प्रत्येक अंगों में रुद्राक्ष धारण करनें की विधि—११ सौ रुद्राक्ष, एक हजार रुद्राक्ष, चार सौ रुद्राक्ष धारण का विधान है। ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण की विधि—५५० रुद्राक्ष का मुकुट, ३०० का जनेऊ तोन लड़ी का बनावे। १०१ रुद्राक्ष गर्दन में, ३ रुद्राक्ष शिखा में, यज्ञोपवीत में ३०, दाहिने कान में ५, बायें में ६, इसी प्रकार भुजाओं में और हाथों में बाँधे, शेष बचे तो कटि में बाँधे। इस प्रकार रुद्राक्ष धारण करने वाले पुरुष दोनों लोकों में पवित्र, पापरहित तथा शिवजी के समान वन्दनीय होते हैं। उनके दर्शन से सब प्रकार के रोग दूर होते हैं। इतने रुद्राक्ष धारण करके शिव का ध्यान करे और शिव-शिव रटे। जो पुरुष ऐसा करता है, उसको देखकर दर्शक का भी पाप नष्ट हो जाता है। अब १००० रुद्राक्ष धारण करने को विधि—३०० का मुकुट, ५०० कन्धे में, १०८ जनेऊ में, ३२ भुजाओं में, १६ हाथों में और शेष बचे तो कण्ठी बना ले। इस प्रकार धारण करने से समस्त पापों का नाश होता है, वह अपने कुल सहित परम पद को जाता है।

रुद्राक्ष धारण करने की अन्य विधियाँ—सिर में १, ललाट में ४०, छाती मे १०८, गले में ३२, दोनों कानों में ६-६, दोनों भुजाओं में ३२, दोनों हाथों में २४ इस तरह से रुद्राक्ष धारण करने वाला शिव के समान होता है। इतने रुद्राक्ष पहिनकर शिवजी की पूजा करे तो कोई संकट नहीं होगा। एक रुद्राक्ष धारण कर सिर से स्नान करे तो गंगास्नान का फल होता है। जो पुरुष रुद्राक्ष धारण करके मरता है, वह शिव का साक्षात्कार करता है। जो नित्य रुद्राक्ष का पूजा करता है, वह राजा के समान धनी होता है।

रुद्राक्ष धारण का प्रभाव—देवीदत्त कुआँ के निकट पूजा करता था, उसमें एक तेली मरकर बेताल हो गया था। उसने पहचान लिया और

उससे पूछा—तुम कौन हो, क्या करते हो ? तब उसने कहा—मैं मरकर यमदूत हो गया हूँ। इस कुआँ में एक वैश्य आयेगा, बैल के द्वारा मारा जायेगा, मैं उसे यमलोक ले जाऊँगा। थोड़े ही देर में एक वैश्य आया। बैल ने मार डाला। रुद्राक्ष धारण के कारण शिवजी के दूत कैलाश में ले गये। यम के दूतों को नहीं मिला।

इसी प्रकार एक वेश्या थी वह एक कुत्ता तथा एक बन्दर को पाल रखी थी। कुत्ता तथा बन्दर को नचाती थी। उनके गले में रुद्राक्ष पहना रखी थी। एक दिन उसके घर में आग लग गयी तब उसने कुत्ते और बन्दर को रस्सी खोल कर भगा दिया। वे दोनों अथाह बन में भटकते हुए मर गये। रुद्राक्ष धारण के प्रभाव से मरने के बाद दूसरे जन्म में बन्दर राजकुमार तथा कुत्त मन्त्री का लड़का हुआ। वे दोनों जातिस्मर हुए। (पूर्व जन्म की बात जाननेवाले)। वे मोतियों की मालाओं को त्याग कर श्रद्धा के साथ रुद्राक्ष की माला धारण करते थे। कुछ दिन बाद एक महात्मा राजा के पास आये। उनके पिता ने इन दोनों के रुद्राक्ष धारण करने का कारण पूछा। महात्मा ने उनके पूर्व जन्म की बात जानकर राजा से सब हाल कहा। और बताया कि वे दोनों पुर्नजन्म में शिव के गण हो जायेंगे यह रुद्राक्ष धारण की महिमा है।

(शिवपुराण)

रुद्राक्ष धारण की विधि—

रुद्राक्ष की माला गूँथ कर तैयार करके पञ्चामृत तथा पञ्चगव्य मिला कर माला को स्नान करावे, प्रतिष्ठा के समय 'नमःशिवाय' यह पञ्चाक्षर मन्त्र को पढे। पुनः माला को सुगन्धित जल से धोवे पञ्चगव्य से स्नान करावे फिर गंगाजल से शुद्ध स्नान करावे। मूल मन्त्र का न्यास करे। फिर शुद्ध भूमि में रखकर मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए चन्दन, फूल, चावल, धूपदीप आदि से माला की पूजा करें। त्र्यम्बकादि मन्त्रों से प्रतिष्ठा करे या अघोर मन्त्र से करे 'मन्त्र—ॐ अघोर ॐ ह्रीं

अघोरतरः ओं ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्र रूप ह्रौं स्वाहा। अनेन अभिमन्त्र्य धारयेत् । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके धारण करे।

बिल्वपत्र तथा शिवलिङ्ग की महिमा—

शिवजी साकार तथा निराकार दोनों हैं। अतः लिङ्ग निराकार का प्रतीक है और मूर्ति साकार का। लिङ्ग पूजा का महत्त्व अधिक है। लिङ्ग पूजा से—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारो मिलते हैं, हजारों जन्मों के पुण्य से ही लिङ्ग पूजा में श्रद्धा होती है। ब्राह्मण को पारे का लिङ्ग, क्षत्री को नर्मदेश्वर, सुवर्ण का लिङ्ग वैश्य को और शिला लिङ्ग शूद्र को अपनी-अपनी इच्छा पूर्ण करता है। कलियुग में मिट्टी का लिङ्ग विहित है। त्रिकाल में नियम से पर्थिवलिङ्ग का पूजन करे तो शिव सायुज्य मिलेगा। जो शिवालिङ्ग पूजा नहीं करता वह पशु है। स्त्रियों को भी लिङ्ग पूजा करना आवश्यक है। क्षिद्र रहित विल्वपत्र से शिवजी की पूजा करे। पञ्चाक्षर ॐनमःशिवाय से विल्वपत्र चढ़ावे, अमावश्या रिक्ता, सक्रान्ति अष्टमी, शिवरात्री तथा सोमवार को विल्वपत्र नहीं तोड़ना चाहिये और विल्वपत्र के बिना शिव जी की पूजा नहीं करना चाहिये।

भस्म धारण की महिमा—

भस्म (विभूति) दो प्रकार की होती हैं—महाभस्म तथा अल्पभस्म। महाभस्म शिवजी का मुख्य स्वरूप है। स्वल्प भस्म दो प्रकार के हैं। जैसे—वेद रीति से धारण करे वह श्रौत, पुराणों की रीति से धारण करे तो स्मार्त। संसारी अग्नि से निर्मित विभूति लौकिक है। ब्राह्मणों को वेद पुराणों द्वारा निर्मित विभूति धारण करना चाहिये। लौकिक रीति से निर्मित विभूति को अन्य लोग धारण करें। ब्राह्मणों को वेद मन्त्र द्वारा विभूति धारण करना चाहिये। अन्य लोग शिव जी का नामोच्चारण करते हुए धारण करें। ब्राह्मण को यज्ञ भस्म अवश्य धारण करना चाहिये। अन्य लोग गोमूत्र से सिञ्चित विभूति धारण करें। भस्म निर्माण करके जल से सींचकर धारण करे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी भी त्रिपुण्ड

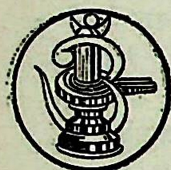
धारण करते हैं। पार्वती, लक्ष्मी तथा सरस्वती भी विभूति धारण करती हैं। योगी तथा सिद्ध लोग जो विभूति नहीं लगाते वे मुक्ति नहीं पाते। भस्म या त्रिपुण्ड रहित प्राणी पापी हैं। पापियों को भस्म प्रिय नहीं होता वे नारकी होते हैं। जो मनुष्य प्रेम से विभूति लगाते हैं उसे कोई कष्ट नहीं होता, उनके पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। बिना भस्म लगाये द्विजों को वेदमन्त्र का उच्चारण नहीं करना चाहिये। तथा मन्त्रों का जप भी नहीं करना चाहिये। भस्म का महात्म्य अनन्त है। उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। सभी को भस्म धारण करना चाहिये। वह तीर्थ के समान पवित्र हैं। जप, तप, व्रतों का फल भस्म धारण से ही पूर्ण होते हैं। भस्मधारी की निन्दा करनेवाले उसे डराने वाले तथा मारने वाले का जन्म व्यर्थ है, वह चाण्डाल है। जितनी भस्म की कणिका जिसके अंग में होगी, उतने ही शिवलिङ्ग जाननी चाहिये। स्त्री, पुरुष, बालक, जवान, वृद्ध सब भस्म धारण कर सकते हैं। कुंकुम (केसर के) ऊपर भी विभूति लगाना चाहिये। जो पुरुष नित्य शिव-पार्वती का ध्यान करता है। तथा भस्म धारण करता है, उनके जीवहत्या आदि समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जो विभूति तथा त्रिपुण्ड की निन्दा करता है वह शिव का द्रोही है। विना भस्म लगाये जल भी नहीं पीना चाहिये। भस्मत्याग के कारण वह नरक में जाकर रक्तपान का कष्ट भोगता है। बिना भस्म के ललाट को धिक्कार है, जिस गाँव में शिव मन्दिर नहीं है उसे धिक्कार है। शिवजी की पूजा न करने वालों को धिक्कार है। विभूति लगाये विना पञ्चाक्षरी मन्त्र तथा तन्त्र विद्या या मन्त्र के अधिकारी नहीं होते। विष्णु आदि सब देवताओं की पूजा में विभूति लगाना चाहिये। भस्मधारी पुरुष के देह में गंगा आदि सब तीर्थं तथा क्षेत्र का निवास होता है। पञ्चाक्षर आदि सभी मन्त्र भी निवास करते हैं। उसके मातृ कुल पितृ कुल दोनों तर जाते हैं। सभी लोकों में भ्रमण कर वह व्यक्ति अन्त में शिव लोक में पहुँच जाता है। वह शिव का महान् गण शिव ही हो जाता है।

मनुष्य सब स्नानों में भस्म स्नान से परम पवित्र हो जाता है। दो पहर के बाद बिना जल के ही विभूति लगाना चाहिये। सन्यासी को तार (प्रणव) रूप शिव का ध्यान करना चाहिये। तार दो प्रकार के हैं-- स्थूल और सूक्ष्म। जिसका तात्पर्य पञ्चाक्षर तथा एकाक्षर से है। भस्म तीन प्रकार से बनता है। शिवानल, वेद तथा भव। उसमें अघोर मन्त्र का प्रयोग मुख्य है। अघोर मन्त्र से लकड़ी शुद्ध करके जलावे। बेल, पलाश, शमी, वर और पीपल की लकड़ीं भस्म के लिए उत्तम है। लकड़ी, लोहा, मिट्टी, काँच, चाँदी आदि के वर्तनों में बनाई गयी विभूति उत्तम होती है। (इति भस्म माहात्म्य)

भस्म धारण करने की विधि—

त्रिपुण्ड में तीन रेखायें होती हैं जिनमें तीनों देवताओं का निवास है। दोनों भृकुटी के अन्ततक त्रिपुण्ड धारण करें। पहली रेखा मध्यमा से, तीसरी रेखा अनामिका से, बीच में अँगूठे से रेखा खीचे। उसमें अनेक देवता होते हैं। प्रणवाक्षर, (ॐ), शुची, आत्मालोक, श्रुतिप्राण, सूक्ति, सवन, दिवौकस आदि। उक्त देवताओं को प्रणाम करके भस्म धारण करे तो मोक्ष मिलता है। २७ रेखाओं का देवता का ३२।१६।८।५ भेद है। शिर, ललाट, कान, आँख, नाक, मुख, कण्ठ, भुजा, उदर, हाथ, छाती, पञ्जर, नाभी, मुष्क, त्रिवली दोनों जंघा के बीच और चरण इन स्थानों में उक्त देवताओं का नाम लेकर विभूति धारण करे। ८ वसु ८ दिक्पति इन्द्र के नाम लेकर भस्म लगावे।

इति विभूति महात्स्य (शिवपुराण)



अथ काशी महात्म्य

मंगलम्— काशीगुहां शिवं गंगां शिवाञ्च गणनायकम् ।
लक्ष्मीनारायणौ चैव भैरवादिन्नमाम्यहम् ॥

काशीपतिं चाऽविमुक्तधारकं, उमापतिं वै भवसिन्धुतारकम् ।
विश्वाश्रयं विश्वरूपं महेशं, तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

श्रीकाशी नगरी भगवान् विश्वनाथ, सदाशिव भूतभावन, परमपावन शंकरजी के त्रिशूल पर स्थित है। काशीपुरी ॐ का स्वरूपा है। इसकी उपमा धनुष से दी गयी है। जैसे धनुष की दो कोटी (सीरा) होती है, उसी प्रकार दक्षिण में लोलार्क और अस्सी तथा उत्तर में वरुणा नदी और केशव भगवान् हैं। इन दोनों कोटी में गंगाजी को धनुष की डोरा माना गया है तथा काशी नगरी को धनुष। यथा—

"लोलार्ककेशवौ कोटी गंगाज्या नगरंधनुः ।
कलिर्लक्ष्यं शरोधर्म शिवो धन्वी पुनातुमाम् ॥"

धर्म ही वाण है, लक्ष्य है 'कलियुग' (जन्म-मृत्यु से मुक्त करना इसका परम लक्ष्य है)। ऐसे विशिष्ट धनुष को धारण करने वाले शिव मुझे पवित्र करें, मेरे पापों का प्रक्षालन करें। (उपनिषद् में भी इसी प्रकार से कहा है—'तारेण धनुषोचित्तं शरेण ब्रह्मवेधयेत्' ॐकाररूपी धनुष में चित्तरूपी बाण लगाकर ब्रह्मतत्त्व का वेधन करे।'

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशी प्राप्तकराणि वै ।
काशी प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥

अन्य अयोध्या मथुरा आदि सात पुरियाँ काशी को प्राप्त कराने वाली है और काशी को प्राप्त करके प्राणिमात्र की निश्चित रूप से मुक्ति हो जाती है। अन्य करोड़ तीर्थों में यह बात नहीं। "यत्र कुत्रापि काश्यां हि मरणेन महेश्वर। जन्तो दक्षिण कर्णे तु मत्तारं समुपादिशत्।" (उपनिषद्)

अर्थात् काशी में जहाँ कहीं भी मरने से शंकरजी प्राणियों के दाहिने कानों में तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं अतः जीवों की मुक्ति होती है। इसी प्रकार—"त्रिशूलगां काशीमधिश्रित्य त्यक्ताशवो मय्येवसंविशन्ते, एष एवोपदेश, एष एव परमो धर्म।" इति श्रुति। (मुक्तिकोपनिषद्)

काश्यां यो वै मृतश्चैव तस्य जन्मपुनर्ननहि।
ये चैक जन्मनामुक्ति यस्मात् करतले स्थिता॥ (लिङ्ग पु०)

(अनेक जन्म संसार बन्धनिर्मोक्षकारिणी) (स्क० पु०)

संसार भयभीता ये ये बद्धा कर्मबन्धनैः।
येषां क्वापिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः॥ (का० ख०)

काश्यां हि काशते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्त हि काशिका॥ (शंकरा०)

काश्यां यत्पतितं वस्तु तत्त्वत्वेह भवेत् यथा।
सुराप्रवाह गंगायां पतितस्तन्मयो भवेत्॥

यथा लोहमणौ स्पर्शात् स्वर्णतां याति निश्चितम्।
तथा काश्यां स्पर्शनात् वै यत्रूपं भवति ध्रुवम्॥

असिवरुयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्तरम्।
अमरामृत्युमिच्छन्ति का कथा त्वितरेजनाः॥

उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत्।
सर्वोप्यस्य शुभकालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः॥

मोक्षं सुदुर्लभ मत्त्वा संसारं चाति भीषणम्।
अश्मना चरणौ हित्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥

काशतेऽत्रयतो ज्योति तन्नामाख्यो य मैश्वरम् ।
अतो नाम्ना परं वस्तु काशीति कथितं विभो ॥

अर्थात्—"भगवान् शंकर के त्रिशूल में स्थित काशी में प्राण त्यागने पर शिव में ही प्रवेश करते हैं, यही शिव का आदेश तथा उपदेश है, यही परम धर्म है। जो प्राणी काशी में मरते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। उनकी एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है। अनेक जन्मों के संसार बन्ध से 'काशी' मुक्ति देनेवाली है। जो लोग संसार से भयभीत हैं, कर्म बन्धन से बँधे हैं तथा जिसकी कहीं गत्ति नहीं है, उनके लिए काशी ही गति है। (यद्यपि काशी सर्वत्र प्रकाश करती है, किन्तु काशी में ही विशेष रूप से ज्ञान को प्रकाश करने वाली शक्ति है। जिसने उस काशी को जान लिया वही काशी को प्राप्त करता है।) काशी में जो भी वस्तु गिरता है, वह काशी का ही रूप धारण करता है। जैसे गंगा के प्रवाह में सुरा (शराब) गिरता है तो वह भी पवित्र गंगाजल ही हो जाता है। पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है। उसी प्रकार काशी के स्पर्श से सब कुछ शिवमय हो (ब्रह्ममय) हो जाता है। अस्सी और वाराणसी के बीच में पञ्चक्रोशात्मिका "काशी महानगरी है। देवता लोग भी इसमें मरना चाहते हैं तो औरों की तो बात ही क्या है ? काशी में उत्तरायण तथा दक्षिणायन का विचार नहीं करना चाहिये। सर्वदा ही यहाँ शुभ दिन बना रहता है। मुक्ति को दुर्लभ मानकर इस संसार में पत्थर से पैर तोड़ कर काशी में निवास करे। काशी में परब्रह्म का ज्योतिर्मय प्रकाश होता है। इसलिए काशी कहते हैं। जो परब्रह्म है वही शिव है।"

काशी नगरी—

एक कवि ने काशी नगरी का निरूपण करते हुए कहा—

परम शिव, विहार भूमि जयतिमातु काशी।
गंगा सिंगार चारुमुक्ति तेरी ही हैं दासी॥

वाराणसी बड़ मशान गौरी पीठमासी।
क्षेत्र मोद विपिन अङ्ग पायो सुखराशी॥
ब्रह्म को प्रकाश जहाँ छूटत यम फाँसी।
अङ्ग - अङ्ग देवगण रोम - रोम वासी॥
पञ्चक्रोश रूप महाँज्योति-सी प्रकाशी॥ इत्यादि।

"वाराणसी में गंगा जी उत्तराखण्ड हिमालय से आती है और उत्तर को ही लौट जाती है, उत्तरवाहनी होकर यह सिद्ध करती है कि सृष्टि के संहार का क्रम यहाँ पर समाप्त हो रहा है। संहार का अर्थ नाश नहीं किन्तु मूल कारण में कार्य का लय होना है। अतः पराशक्ति संहार क्रम से शीघ्र मोक्ष देने के लिए काशी में सदा तत्पर हैं। यह सिद्ध हुआ।"

काशीजी का स्वरूप वर्णन--

श्यामा षोडषवर्षिकी सुकरुणा मूर्तिदधानावरा,
हस्ताभ्यामभयं च विश्व जननी विद्येति सा गीयते।
यादृष्ट्वा मरणंगतापि सततं या कीर्तिता संस्तुता
या स्पृष्ट्वा नृभिरात्मतत्त्वममलं दद्याध्रूवं काशिका॥

अर्थात् जिनकी सोलह वर्ष की अवस्था है, करुणा की सुन्दर मूर्ति धारण करती हैं, वर तथा अभय के मुद्राओं से दोनों करकमल सुशोभित हैं। विश्व जननी, ज्ञान की खानी जिन काशी को देखकर, नाम कीर्तन कर स्तुति कर, मरणासन्न मानवों को (जीव समुदायों को) सदा सर्वदा स्पर्श मात्र करके ही अमल आत्मतत्त्व निश्चित प्रदान करती हैं। इस प्रकार काशी का गान करते हैं। भगवान् सदाशिव ने कहा है कि यह काशी नगरी पराशक्ति है, सरणागतों का उद्धार करती है।

क्षेत्रे ऋणत्रयात् काशी मोचयेत् सर्वदेहिनः।
आधारभूता जीवानामाद्याप्रकृतिरव्यया॥

मूर्तिरूपा चित्स्वरूपाऽविमुक्तेश्वर सेवया ।
पूर्णरूपा स्वमहात्म्यं स्वयमेव प्रकाशते ॥

काशी नगरी देहधारियों को तीनों ऋणों से मुक्त करती हैं। जीव समुदाय की आधारभूता अव्यय प्रकृति है। अविमुक्तेश्वर शिव की सेवा के लिए मूर्तिमती चित् स्वरूपा है। पूर्ण रूप से अपने महत्त्व को स्वयं प्रकट करती है। और भी देखिये--

काशी ब्रह्मेति विख्याता तत् विवर्तो जगत्भ्रमः ।
अविवर्तं तदेवाहुः काशीति ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थात् काशी नगरी ही ब्रह्मस्वरूपा है, समस्त विश्व उसी का विवर्त है। अतएव और सब मिथ्या है। अविवर्त ब्रह्म ही काशी है। ऐसा ब्रह्मवादियों का कथन है। सेतुबन्ध टीका--"यत् ब्रह्म सर्ववेदे प्रतिपाद्यं सैव काशीति, कंसुखमाशयति भोजयति स्व भक्तानिति वा" (अपने भक्तों को सुख प्रदान करना काशी का अर्थ है)। "काशन्ते तनु त्यागमात्रेणानन्द रूपतया राजन्ते प्राणिनो यस्यां सा काशी" अर्थात् शरीर त्यागमात्र से काशीजी में प्राणीमात्र आनन्द स्वरूप ब्रह्म रूप से स्थित हो जाते हैं। जो ब्रह्म सम्पूर्ण वेद प्रतिपाद्य है वही काशी है।

श्री काशीजीकी उत्पत्ति—

पार्वतीजी ने भगवान् शंकरजी से कहा—

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्य वक्तुमर्हस्यशेषतः ।
ममोपरि कृपांकृत्वा लोकानां हितकाम्यया ॥ (का० ख०)

अर्थात् लोकहित के लिए तथा मेरे ऊपर कृपा करके इस काशी क्षेत्र का सम्पूर्ण महत्त्व बतलाने की कृपा करें। शंकरजी तथा पार्वतीजी के प्रसंग का वर्णन करते हुए सूतजी ने कहा—"सच्चिदानन्द परमात्मा को जगत् की रचना करने की इच्छा हुई और उन्होंने अपने चिदानन्द रूप से तथा अपनी दिव्य शक्ति से प्रकृति एवं पुरुष का निर्माण किया। चिदा--

नन्द स्वरूपाभ्यां पुरुषावपि निर्मितौ' अर्थात्—इन दोनों के कार्य के विषय में संशय होने पर परम शिव की वाणी हुई 'आप तपस्या करें।' तप द्वारा उत्तम सृष्टि होगी।

महा संशयमापन्नौ प्रकृति पुरुषश्च तौ।
तदा वाणी पमुत्पन्ना निर्माणात् परमात्मनः॥
तपश्चैव प्रकर्तव्यं तत सृष्टिरनुत्तमा॥

उस वाणी को सुनकर उन दोनों ने कहा—हम कहाँ पर तप करें। तपस्थली कहीं भी नहींदिखाई देती। उनके निवेदन को सुनकर शिवजी ने समस्त तेज का सार सम्पूर्ण उपकरणों से परिपूर्ण एक रमणीय नगर का निर्माण किया और अन्तरिक्ष में श्री विष्णु भगवान् के पास उपस्थित कर दिया। उसी में शिवजी का ध्यान करते हुए बहुत समय तक विष्णु ने तपस्या की उनके तपस्या के श्रम से अनेक प्रकार की जलधारा उत्पन्न होकर सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त हो गयी। यह देखकर विष्णु भगवान् ने आश्चर्य से चकित होकर शिर हिलाया और शिर हिलने से भगवान् बिष्णु के कानों से मणि का कर्णभूषण गिर पड़ा। वही महान् 'मणिकर्णिका' बढ़ने लगी और तीर्थ रूप में स्थित हुई। वह जलराशि में प्लावित होकर और बढ़ कर पाँच कोश में व्याप्त हो गयी।

शंकर भगवान् ने अपने त्रिशूल में स्थापित कर लिया। उसी पञ्चक्रोशात्मक स्थल में भगवान् विष्णु ने अपनी प्रकृति शक्ति के साथ शयन किया तब भगवान् शिव को प्रेरणा से विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए। और उन्होंने शिव की आज्ञा से चौदह लोक की रचना की। इनमें कर्मानुसार दुःख से व्याकुल प्रजा के उद्धार के लिये शिवजी ने अपने त्रिशूल में स्थित पञ्च कोशात्मक काशी को त्रिशूल से उतार कर मर्त्य लोक में स्थापित कर दिया। यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रलय काल में जब नष्ट हो जाता है, तब भी पञ्चक्रोशात्मक काशी का लय नहीं होता—क्योंकि भगवान् शिव अपने त्रिशूल में सुरक्षित रखते

हैं। और फिर सृष्टि होने पर मर्त्य लोक में स्थापित करते हैं। यही काशी-वाराणसी का अद्भूत लोकोत्तर चमत्कार हैं।

काशी रहस्य में भी इसी प्रकार की कथा है। एक समय श्वेत वराहकल्प में प्रलय हुआ और सम्पूर्ण पृथ्वी जल में मग्न हुई। तब मह, जन, तप लोक के निवासी ऋषियों ने पृथ्वी का उद्धार करने के लिये पुरुष सूक्त से भगवान् विष्णु का स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर उन्होंने ऋषियों को दर्शन देकर स्तुति करने का कारण पूछा—तब ऋषियों ने कहा हे प्रभो ? सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो गयी इसका उद्धार कीजिये। पृथ्वी के जल मग्न होने पर जल के ऊपर यह छत्राकार ज्योति परम प्रकाश मय है, और जिसको आप आश्चर्य से देख रहे हैं, यह क्या है।

छत्राकारं तु तं ज्योति जलादुर्ध्वं प्रकाशते।
निमग्नायां धरिण्यां तु ननिमज्जति तद् कथम् ॥

तव भगवान् विष्णु ने कहा, हम पृथ्वी का उद्धार शीघ्र ही वराह का रूप धारण करके करेंगे। यह जो दीख रहो है—परम ज्यतिर्मय काशी नगरी है।

छत्राकारं परं ज्योति दृश्यते गगने स्थितम्।
तदिदं परमं ज्योतिः काशोति प्रथितं बुधैः ॥

अर्थात्—छत्र के आकार का परमज्योति आकाश में स्थिर है। वह जो परम ज्योतिर्मय है, इसे वुध जन काशी ऐसा कहते हैं। भगवान् विष्णु ने कहा लोक के उद्धार के लिये मैंने भगवान् शिव का हृदय में ध्यान किया तब भगवान् शंकर लिङ्ग रूप से हृदय से बाहर प्रकट हो गये, और बढ़कर पञ्चक्रोशात्मक अविमुक्त क्षेत्र हो गये। वह यही काशी नगरी है।

'मया स्मृतो लोक मुक्त्यै प्रादेशं परिभावतः।
लिङ्गरूपधर शम्भु हृदयाद्ववहिरागतः ॥
महती बुद्धिमासाद्य पञ्चक्रोशात्मकोऽभवत् ॥' (इत्यादि)

वाराणसी की उत्कृष्टता—

इस वाराणसी अविमुक्त क्षेत्र में यदि किसी भी जीव ने शरीर त्याग किया तो निश्चित है जन्ममरण के चक्र से सदा के लिये छूटकारा पा जायेगा। चाहे वह किसी योनि में हो वर्णाश्रम में हो। अब प्रश्न उठता है कि यदि वाराणसी में मृत्यु प्राप्त करके प्राणीमुक्त हो जाता है तो धर्म, अधर्म, योग, भक्ति, ज्ञान आदि साधनों के अवलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर देते हुए भगवान् शंकर कहते हैं कि पाप रहित प्राणी की तत्काल मुक्ति हो जाती है। और पापियों की भैरवी यातना का उपभोग करना पड़ता है। तब मुक्ति होती है।

अपापश्च मृतो यो वै सद्यो मोक्ष स मश्नुते।
स पापश्च मृतो यः स्यात् काय ब्यूहान् स मश्नुते ॥

अर्थात्—पाप रहित प्राणी के मरने पर तत् काल मुक्ति हो जाती है। और पापी जीव के मरने पर (कायब्यूह में) भैरवी यातना भोग कर शुद्ध होने पर मुक्ति होती है। (जैसे हरा घाँस और सुखा घाँस)। सुखा घाँस गग्नि में तत्काल भस्म हो जाता है। हरा घाँस धीरे-धीरे जलता है। पापियों को ३६ हजार वर्ष यातना भोगना पड़ता है तब मुक्ति होती है।

शास्त्रों में कर्म तीन प्रकार के बताये गये हैं। १ सञ्चित, २ क्रियमाण तथा ३ प्रारब्ध—पूर्व जन्म के कर्म को संचित, इस जन्म में भोगप्रद कर्म प्रारब्ध तथा इस समय किये जाने वाले कर्म क्रियमाण (आगामी) कहलाते हैं। भोग से प्रारब्ध का क्षय होता है। सञ्चित् तथा क्रियमाण कर्म के नाश में साधनों की अपेक्षा होती है। सञ्चित् क्रियमाण कर्म का काशी जी में विनाश हो जाता है।

"प्रारब्धकर्मणोभोगात् क्षयश्चैव न चान्यथा।
उपायेन द्वयोनाशः कर्मणोः पूजनादिभिः ॥
सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति 'काशीपुरी' विना ॥"

अर्थात्—प्रारब्ध कर्म का नाश भोगने से ही होता है अन्यथा नहीं। पूजनादि सत्कर्म से उक्त दोनों का नाश होता है।

काशी प्राप्त करके प्रारब्ध कर्म भी अत्यन्त अल्प काल में ही 'शिव' की कृपा से नाश हो जाता है। बिना काशी का नहीं हो पाता।

वाराणसी हमारी संस्कृति या धर्म का सर्वस्व है। अमृतत्त्व प्रदान एवं भाविजन्म हेतु कर्म बिनाशिका है। अविमुक्तेश्वर भगवान् शिवजी यहाँ सदा निवास करते हैं। यहाँ मृत्यु पाने के लिये देवता भी प्रयास करते हैं।

अत्रैव प्राप्यते जीवैः सायुज्य मुक्तिरुत्तमा।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः॥

पञ्चक्रोशी महापुण्याहत्त्याकोटि विनाशिनी।
अमरामरणं सर्वेवाञ्छंतीह प्रसूयते॥

वाराणसी सदा सेव्या मोक्षदा शिवरूपिणी।
काशिका लिङ्गरूपा च पञ्चक्रोशसमन्विता॥

शिवामृतं ये श्रुतिभिपिवन्ति, गंगामृतं ये मुख्यतः पिवन्ति।
पिवन्ति ये काश्यमृतं पुनः पुनः न जातुमातुस्तनपाभवन्ति॥

अर्थात्—शिवामृत (शिवजी की कथा मृत) को कानों से पीते हैं। गंगामृत को मुख से पान करते हैं। जो लोग काशी रूपी अमृत को वारम्वार पान करते हैं, सेवन करते हैं, वे कभी भी माता के पयोधर का पान नहीं करते।

काशी नगरी कैलाश से भी श्रेष्ठ है—

कैलाशादधिका काशी सर्वदैव प्रकाशिका।
कैलासे शंकरोप्येक काश्यां सर्वेपिशंकराः॥

अर्थात्— कैलास से काशी श्रेष्ठ है, क्योंकि सदा प्रकाश करती है। कैलास में एक शंकरजी रहते हैं। काशी में कंकर-कंकर में शंकर हैं।

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम् ।
काश्यांवासः सतांसंगः गंगाम्भः शिव पूजनम् ॥

इस असार संसार में चार ही वस्तु सार है, काशीवास, सत्संग, गंगा जल पान और शिवजी का पूजन ? (ये चार वस्तु काशी वास करने से ही सुलभ होते हैं) इसलिये कहावत भी है—

चाना चबैना गंग जल जो पूरवही करतार ।
काशी कबहुन छाडिये विश्वनाथ दरबार ॥

काशीजी की महिमा के कारण ही यह उक्ति प्रसिद्ध है । (इत्यादि)

काशीजी की महिमा तथा शिवजी की बन्दना—

"भूमिष्ठाऽपि न यत्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चै रधः स्थाऽपिया,
या वद्धा भुविमुक्तिदास्युरमृतं यस्यां मृताजन्तवः ।
या नित्यं त्रिजगत् पवित्र तटिनी तीरे सुरैः सेव्यते,
सा काशी त्रिपुरारी राजनगरी पायादपायाज्जगत् ॥"

अर्थात् जो पृथ्वीतल पर विराजमान् होने पर भी भूमि नहीं है, जो ऊपर होने पर भी स्वर्ग नहीं (उसे ऊपर है), जो स्वयं भूमण्डल पर बद्ध होने पर भी मुक्ति देने वाली है, जहाँ मृतक प्राणि मुक्त हो जाते हैं (अमर हो जाते हैं) तथा जिसको त्रिलोक पावनी गंगा के तट पर है, सर्वदा देवगण सेवन करते रहते हैं, वही त्रिपुरारी शिव की राजधानी काशी नगरी आपत्तियों से संसार की रक्षा करे ।

"नमस्तस्मै महेशाय यस्य सन्ध्यात्रयच्छलात् ।
यातायातं प्रकुर्वन्ति त्रिजगत्पतयोऽनिशम् ॥"

जिस कारण ब्रह्म की सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूप सन्ध्या के ब्याज से कार्यरूप त्रैलोक्याधिपति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर सतत यातायात करते रहते हैं, उस कारण रूप महेश्वर को हम प्रणाम करते हैं ।

काशी मुक्ति निर्णय—

वेद शास्त्र पुराणों में कहा गया है कि 'ज्ञानान्मुक्ति' ज्ञान से मुक्ति होती है। 'ऋतेज्ञानान्नमुक्ति' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। स्कन्द पुराण काशीखण्ड में लिखा है—'काश्यांमरणान्मुक्ति' काशी में मरने से मुक्ति होतो है। इन दोनों वाक्यों में विरोधाभास है। दोनों ही शास्त्र वाक्य हैं। त्रिकालदर्शी ऋषियों के वाक्य हैं। 'ऋषयोमन्त्रद्रष्टार' ऋषि लोग मन्त्रों के द्रष्टा होते थे। वेदान्तों के पारङ्गत थे। उनकी प्रज्ञा ऋतम्भरा थी। सत्य को ग्रहण करने वाली थी। उनका कथन मिथ्या नहीं होता। उनकी शैलो विभिन्न होने से विरोधाभास प्रतीत होता है। परन्तु लक्ष्य या सिद्धान्त एक है। 'काश ब्रह्मतत्त्व प्रकाशः यस्यामवस्थायां सा काशी, तस्यां काश्यां मरणान्मुक्तिः' अर्थात् काशदीप्तौदीप्ति या प्रकाश को कहते हैं। कौन प्रकाश ब्रह्मतत्त्व का प्रकाश या ब्रह्मज्ञान। जैसे श्रुति में 'असतोमा सद्‌गमय। तमसोमा ज्योतिर्गमय। मृत्योमाअमृतं गमय। इत्यादि। काशी का दूसरा अर्थ वाराणसी भी है। इसका आध्यात्मिक अर्थ जावालोपनिषद में इस प्रकार है—काशी को अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है और इस क्षेत्र में प्राणियों के प्राणत्यागने पर शंकरजी ब्रह्मतारक मन्त्र का उपदेश देते हैं, जिससे प्राणियों की मुक्ति होती है। वह अविमुक्त किसमें स्थित है? वाराणसी में। वाराणसी की व्युत्पत्ति यह है—जो इन्द्रियकृत दोषों को वारण करती है। इसी से 'वारणा' हुई और सर्वइन्द्रियकृत पापों का नाश करती है, इसलिए नाशी हुई, तब वाराणसी हुई। काशीखण्ड में काशी का काशी, वाराणसी, रुद्रावास, आनन्दवन, आनन्दकानन इत्यादि नाम हैं। अतः काशी मरण से शिव के द्वारा प्राप्त ज्ञान से मुक्ति मिलती है, बिना ज्ञान के नहीं।

काशी मुक्ति की विशेषता—

स्वतः ज्ञानी पुरुष इस कलिकाल में हजारों में कोई एक ही मुक्त होते हैं। किन्तु काशी में तो सबकी मुक्ति होती है। भगवान् विष्णु ने तपस्या

करके शिवजी से वर मांगा कि इस काशी नगरी में अवर्णनीय परम ज्योति का प्रकाश होने से ही इसका नाम काशी है। जरायुज आदि जितने जीव हैं, सब मोक्षलाभ करें। काशी में स्नान, दान, तप, होम, तर्पण, यज्ञ, भोजनादि जितने भी शुभ कर्म किये जायं, वे सब 'मोक्षलक्ष्मी' का सम्पादन करने वाले होते हैं।

भगीरथजी ने अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए त्रिपथगामिनी गंगाजी को प्रसन्न करके इस भूतल पर लाया। ज्ञानप्रवाहा विमला भागीरथी को आनन्दकानन काशी नगरी में निर्वाणपद के प्रकाशन हेतु उपस्थित कर दिया। अतः काशी नगरी की विशेषता और भी बढ़ गयी। यहाँ पर बड़े-बड़े पातकी भी उत्तरवाहिनी गंगा तथा शिवजी द्वारा प्रदत्त तारकमन्त्र के उपदेश से निश्चय ही मुक्ति पाते हैं। उत्तर दिशा में वरुणा, दक्षिण दिशा में अस्सी इन दोनों नदियों के संगम से यह काशी नगरी वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध हुई। वरुणा तो वारण करती है। दुर्वृत्त दुष्कर्मियों के प्रवृत्तियों को रोकती है और असि (तलवार) असत् बुद्धि को दूर करतीं है। काटती है। यह बाराणसी का अर्थ सार्थक है। अतः काशी तथा वाराणसी के आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक व्युत्पत्यार्थ पर विचार करने पर पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में समानता है। जो व्यवस्था सूक्ष्म रूप से पिण्ड शरीर की है, वही व्यवस्था स्थूल रूप से भौतिक जगत् की है।

ज्ञानी की मुक्ति तत्काल होती है और अज्ञानी की काशी में मरने से। श्री विश्वनाथजी की अहैतुकी कृपा से तारकमन्त्र के उपदेश से ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् होती है। काशी मरण से तो पुण्यात्मा, पापात्मा, ज्ञानी, अज्ञानी, सभी की मुक्ति होती है। इसमें कोई संशय नहीं है। अयोध्या आदि सात पुरियों में भी मोक्ष की प्राप्ति कही गयी है, किन्तु प्रमुख मान्यता काशी की ही है। अन्य क्षेत्रों में वास करने से मोक्षप्राप्ति के संस्कार की क्रमोन्नति अवश्य होती है और काशी की प्राप्ति होती है।

काशी में मरने पर तो निश्चित ही मुक्ति होती है। अतः काशी मरण अति दुर्लभ है। काशी की उत्तमता का परिचय निम्नलिखित उक्तियों में वर्णित है—

गंगातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्रापि काश्युत्तमा,
तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तम मता यत्रेश्वरोमुक्तिदः ?
देवानामपि दुर्लभंस्थलमिदं पापौघनाशक्षमं,
पूर्वोपार्जित पुण्यपुञ्जगमकं पुण्यैर्जनैः प्राप्यते ॥

अर्थात् "भगवती गंगाजी का तट सम्पूर्ण स्थलों में अतिउत्तम है। उसमें भी श्रीकाशी सर्वोत्तम है। उसमें भी मणिकर्णिका परम उत्तम है, जहाँ पर मुक्तिदाता शिवजी सर्वेश्वर निवास करते हैं। यह काशीपुरी देवताओं को भी दुर्लभ स्थली है। पापों के समूह का नाश करने में सक्षम है। पूर्वजन्म के पुण्यपुञ्ज के उपार्जन करने वाले सुकृतीओं (पुण्यात्मा) द्वारा ही प्राप्य है। (पाने योग्य है।")

काशी नगरी का आकार—

कृते त्रिशूलवज्ज्ञेयं त्रेतायां चक्रवत् यथा।
द्वापरे तु रथाकारं शंखाकारं कलौयुगे ॥

अर्थात् सत्ययुग में काशी त्रिशूल के समान तथा त्रेता में चक्र के समान तथा द्वापर में रथ के आकार में और कलयुग में शंख के समान बतायी गयी है।

काशी नाम की विशेषता—

वाराणसीति काशीति महामन्त्रमिदं जपन्।
यावज्जीवं त्रिसन्ध्यन्तु जातु जन्तु न जायते॥

अर्थात् वाराणसी या काशी ऐसा महामन्त्र को तीनों सन्ध्याओं मे जो जीव जप करता है, उसका कभी भी जन्म नहीं होता। काशी शब्द की सिद्धि—काशदीसौ = धातु से अच् प्रत्यय तथा ङीप् करने पर सिद्धि

होती है। (काशयति प्रकाशयन् इदं सर्वं या मोक्षप्रकाशिका)। शिवजी कहते हैं–सबको प्रकाश करनेवाली मेरी प्रिय नगरी काशी मोक्ष को प्रकाश करने वाली है। अविमुक्त - ब्रह्मतत्त्व ही अविमुक्त काशी है, उससे विभाजित होकर जो माया सृष्टि के रूप में प्रकट हुई। उसमें प्रतिबिम्ब ही पुरुष कहलाया। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव मिलकर ब्रह्म से आकाश, उससे पृथ्वी तक माया का विलास रूप माया में ही स्थित माया के अधीन है। परन्तु 'अविमुक्त वाराणसी ब्रह्म रूप हैं।

निर्मुक्तस्वस्मिन् महतत्त्वे स्थितं ब्रह्म स्वरूपं येन तत् अविमुंक्तं।

शिवजी इस काशी को कभी नहीं छोड़ते अतः इसे अविमुक्त कहा है।

विमुक्तं न मया यस्यां मोक्षतेन कदाचन।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मात् अविमुक्त इति स्मृतः॥

अर्थात् प्रलयकाल में भी शिवजी इसे नहीं छोड़ते, क्षण मात्र भी अविमुक्त (काशी) नहीं छोड़ते। कहीं जाते हैं तो लिंग रूप से अपना प्रतीक छोड़ते हैं। लिङ्ग रूप से नित्य काशी में रहते हैं।

अवि शब्देन पापस्तु वेदोक्तो कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टं अविमुक्तमतोच्यते॥ (लिं० पु०)

अर्थात् शिवजी ने कहा–अवि शब्द से पाप का कथन है उस पाप से मुक्ति पाने के लिए मैंने सेवन किया, अतः 'अविमुक्त' कहा है।

यथा प्रियतमा देवि मम त्वं सर्वसुन्दरी।
तथा प्रियतमं चैतत् मे सदाऽऽनन्द काननम्॥

अर्थात् शिवजी कहते हैं–हे सुन्दरि पार्वती जिस प्रकार तुम सर्वसुन्दरी मुझे प्यारी हो उसी प्रकार यह आनन्दकानन काशी भी अति प्यारी है।

वरुणा तथा असि नदी का प्राकट्य––वरुणा तथा अस्सी दोनो नदी के मध्य में काशी (वाराणसी) स्थित है। अस्सी नदी शुष्क है और वरुणा जलवाली है। दोनों नदी विष्णु भगवान् के दोनों चरणों से क्रम से निकली

हैं। काशी की रक्षा के लिए ये क्षेत्रपाल के रूप में रहती हैं। पुराणों में वरुणा को पिङ्गला, अस्सी को इड़ा तथा वाराणसी को सुषुम्ना के रूप में वर्णन किया है। महाश्मशान— श्म शव मुर्दा और 'शान' शयन करना।

श्मशब्देन शवप्रोक्तं शयनं शानउच्यते।
निर्वाचयति श्मशनार्थं मुनेः शब्दार्थ कोविदाः।
"महान्त्यपि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते।
शेरतेथ शवो भुत्वा श्मशानं तु ततोमहान्।"

अर्थात् प्रलयकाल के उपस्थित होने पर सभी महाभूत शव होकर सो जाते हैं। इस लिए महा शमशान कहा जाता है।

"काशी जी का गुणगान"

जयति जयति काशी काशितः ज्ञानराशिः।
शिवहरि रविधात्री श्रीगणेशाम्बि कानाम्॥
निवसति रियमाद्या तां भजध्वं भजध्वम्॥
स्मरत नमत शुद्धा शुद्धये कीर्तयेध्वम्।

अर्थात् "जय हो जय हो श्री काशी नगरी की जय हो' ज्ञान की खाँनो श्री काशी जी की जय हो' ज्ञान को प्रकाशित करने वाली श्री काशी नगरी की जय हो ? शिव और विष्णु को धारण करने वाली श्री गणेश जी की जननी काशी (शिवा) की जय हो ? यह काशी नगरी अनादि काल से स्थित है इसका सेवन करो, सेवन करो। स्मरण तथा नमस्कार करने से शुद्ध करने वाली श्री काशी नगरी का कीर्तन करो, कीर्तन और गाँन करो, स्मरण तथा नमन मात्र से शुद्ध करने वाली श्री काशी का कीर्तन करो ? कीर्तन करो। (इति) श्री काशी जी की मिट्टी या रज सोने के तुल्य माना जाता है, अतः बाहर ले जाने से सोने की चोरी करने का पाप लगता है। काशी का त्याज्य वस्तु कुछ भी नही है।"
"कृत्वापाप सहस्त्राणि पिशाचत्वं बरं नृणाम्' हजारों पापों को करके पिशाच होकर भी काशी वास करना और काशी में मरना उत्तम है।

एकोऽपि ब्रह्मणो येन काश्यां सं वासित प्रिये ।
काशी वास मवाप्यैव ततो मुक्ति स विन्दति ।। (का. ख.)

अर्थात् काशी में एक भी ब्राह्मण को रहने की सुविधा, निवास, या घर का दान करता है, वह भी काशी वास का फल पाता है और उसे मुक्ति मिलती है ।

"विवेकिने महाविद्यांयुक्ताय प्रियवादिने ।
दातव्यमेव सुगृहं कारयित्वा विशेषतः ।।
गृहदानात् भवेत् मुक्तो वंशवृद्धि तथाऽक्षये ।
अर्थकामादिकं सर्वमाप्नोति गृहदानतः ।
व्यायी कृत्वा धनं किञ्चित् अत्रकृत्वाभुवंशुभम् ।।
गृहमुत्थाप्य योदद्यात् स याति परमंपदम् ।। (का० ख०)

अर्थात् विवेकी वेदवेत्ता विद्वान् तथा प्रियवादी ब्राह्मण को सुन्दर मकान बनाकर दान कर देना चाहिये । काशी में घर का दान करने से मुक्ति मिलती है तथा वंश की वृद्धि भी होती हैं । गृहदान से अर्थ तथा कामादि सभी पदार्थ मिलते हैं । धन खर्च करके काशीजी में सुन्दर भूमी में मकान बनाकर दान करे तो वह निश्चय ही परम पद को जाता है । (का० ख०)

इस प्रकार काशी की महिमा बतायी गयी है, काशी में मणिकर्णिका का विशेष महत्व है । काशी ही मणि कर्णिका है । ऐसा भी प्रमाण है ।

गंगातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्रापि काश्युत्तमा ।
तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तममता यत्रेश्वरो मुक्तिदः ।।
देवानामपिदुर्लभं स्थलमिदं पापौध नाशक्षमम् ।
पूर्वोपार्जित-पुण्यपुञ्ज गमकं पुण्यैः जनैः प्रप्यते ।।

अर्थात् गंगा का तट सर्वत्र पवित्र है, काशी में अति पवित्र और उत्तम है, उसमें भी मणिकर्णिका अति उत्तमोत्तम है जहाँ पर शिवजी मुक्ति के दाता हैं । यह स्थल देव दुर्लभ है, पाप समुदाय को नाश करने में

सक्षम है। पुण्यात्माओं के द्वारा पूर्व जन्मोंपार्जित पुण्य पुञ्ज से ही इसको प्राप्त किया जाता है। अतः सर्वश्रेष्ट मणिकर्णिका में मध्यान्ह में शिव पार्वती, विष्णु भगवान्, लक्ष्मीजी, ब्रह्मा, इन्द्रादिदेव गण आते हैं और स्नान करते हैं। विष्णु का हरिनाम भी यहाँ स्नान करने से ही पड़ा है। वे पापों का हरण करते हैं। (इति संक्षिप्त काशी महात्म्य) अथ श्री काशी विश्वनाथजी की अन्तरगृही यात्रा या परिक्रमा (का० ख०)

अन्तरगृही यात्रा करने वालों को प्रातः स्नान करके नित्यकर्म से निवृत्त होकर मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणनाथ विनायक, ज्ञानवापी तथा विश्वनाथजी का पूजन करके मुक्तिमण्डप में बैठकर संकल्प लेकर कहे—मैं समस्त पापों की शान्ति के लिए अन्तरगृही यात्रा करूँगा। भगवान् शिव मुझे आज्ञा दें।

अन्तर्गृहस्य यात्रां वै करिष्येऽघौघशान्तये।
देहि आज्ञां महादेव पुनर्दर्शनमस्तुते॥

स प्रकार से आज्ञा लेकर मौन होकर मणिकर्णिका में स्नान करके यात्रा प्रारम्भ करे और निम्नलिखित स्थलों का दर्शन और पूजन करे—

१. मणिकर्णिकेश्वर महादेव (गोमठ के पास) है।
२. कम्वलाश्वतेश्वर महादेव (काकाराम गली) में हैं।
३. वासुकीश्वर और पर्वतेश्वर (संकठाघाट) में हैं।
४. गंगाकेशव, ललितादेवी (ललिताघाट) में हैं।
५. जरासन्धेश्वर (मीरघाट में गुप्त मूर्ति) हैं।
६. सोमनाथेश्वर (मानमन्दिर के पास) हैं।
७. वराहेश्वर (दशाश्वमेध घाट) में हैं।
८. ब्रह्मेश्वर (वालमुकुन्द चौक के पास) हैं।
९. अगस्तीश्वर (अगस्त कुण्ड के पास) हैं।
१०. कश्यपेश्वर (जंगमबाड़ी आश्रम) में हैं।
११. हरिकेश्वर (जंगमबाड़ी खारी कुआँ) में हैं।

१२. वैद्यनाथेश्वर (कोदई की चौकी) में हैं।
१३. ध्रुवेश्वर (मिसिर पोखरा स्कूल के पास) हैं।
१४. गोकर्णेश्वर (कोदई दैलू गली) में हैं।
१५. हाटकेश्वर (हड़हा मुहल्ले) में हैं।
१६. अस्तिक्षेप तड़ाग। (वेनिया) में हैं।
१७. कीकसेश्वर (राजादरवाजा) में हैं।
१८. भारभूतेश्वर (गोविन्दपुर-शिवकुमार गली) में हैं।
१९. चित्रगुप्तेश्वर (मछरहट्टा) में हैं।
२०. चित्रघण्टादेवी (चन्दुना गली चौक) में हैं।
२१. पशुपतीश्वर (प्रसिद्ध स्थान है)।
२२. पितामहेश्वर (शीतला गली) में हैं।
२३. कमलेश्वर (ब्रह्मपुरी) में हैं।
२४. चन्द्रेश्वर (सिद्धेश्वर) में हैं।
२५. विरसेश्वर-आत्मवीरेश्वर (संकठाघाट) में हैं।
२६. विश्वेश्वर (निमवाली ब्रह्मपुरी) में हैं।
२७. अत्रीश्वर (अग्निश्वर घाट) में हैं।
२८. नागेश्वर (भोसला घाट) में हैं।
२९. हरिश्चन्द्रेश्वर, चिन्तामणि विनायक, सेनाविनायक, वशिष्ठेश्वर, वामदेवेश्वर और सोमाविनायक (संकठाघाट) में हैं।
३०. करुणेश्वर, त्रिसन्ध्येश्वर (ललिता घाट) में हैं।
३१. विशालाक्षी देवी, धर्मेश्वर (विश्ववाहुका) में हैं।
३२. आशा विनायक, वृद्धादित्य (मीरघाट) में हैं।
३३. चतुर्वक्त्रेश्वर, ब्राह्मीश्वर (कोतवाली) में।
३४. चण्डी-चण्डीश्वर (कालिका गली) में हैं।
३५. भवानीशंकर (शुक्रकूप के पास) में हैं।
३६. अन्नपूर्णा, ढुण्डीराज, राजराजेश्वर (ज्ञानवापी) में हैं।
३७. लाँगलीश्वर (खोवा बाजार) में हैं।

३८. नकुलीश्वर (अक्षयवट) के पास हैं।

३९. पन्नगेश्वर, परद्रव्येश्वर, निष्कलेश्वर एवं
मार्कण्डेश्वर (दण्डपाणि के पूर्व) में हैं।

४०. अप्सरेश्वर (ज्ञानवापी के पश्चिम) में हैं।

४१. गंगेश्वर (मस्जिद के पूरब या सम्मुख) हैं।

४२. ज्ञानवापी तथा नन्दीकेश्वर (नन्दी के पास) हैं।

४३. तारकेश्वर, महाकालेश्वर, दण्डपाणि महेश्वर (नैऋत्य कोण के पीपल के नीचे हैं)।

४४. वीरभद्रेश्वर, अविमुक्तेश्व, मोदादि पाँच विनायक तथा ज्ञान-वापी कुआँ) विश्वनाथ मन्दिर के पास हैं।

४५. विश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णाजी का दर्शन करके अन्तरगृही यात्रा पूर्ण करके संकल्प छोड़ावे और प्रार्थना करे—

अन्तरगृहस्य यात्रेयं यथा वक्षमायाकृता।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत् प्रसादात् उमापते॥

(इति अन्तरगृही यात्रा)

अथ काशी की पञ्चक्रोशी यात्रा ५० मील की

२५ कोश की पञ्चक्रोशी यात्रा तीन या पाँच दिन में पूर्ण होती है। इस यात्रा को स्नान तथा नित्यकर्म से निवृत्त होकर करें। काशीनगरी को दाहिने करके चले। शौचादि का त्याग करना, थूकना, खाना-पीना, विश्राम आदि करना हो तो बायीं तरफ करना चाहिये। काशी को शंकरजी का ज्योतिर्लिङ्ग मानकर भक्तिभाव से परिक्रमा करना चाहिये। यात्रा के प्रथम दिन हविष्यान्न का भोजन करे। सर्वप्रथम स्नानादि से निवृत्त होकर ज्ञानवापी में जाय। वहाँ कायिक, वाचिक, मानसिक, ज्ञाताज्ञात पापों के नाश के लिए ज्योतिर्लिङ्ग का, श्रीकाशी विश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णाजी, लक्ष्मीनारायण, ढुण्ढीराज, ५६ विनायक, १२ आदित्य, १३ नृसिंह, १६ केशव, रामकृष्ण, केशव, कूर्म, मत्स्यादि अवतारों, विष्णु,

शिव, गौरी आदि से युक्त इस काशी क्षेत्र की प्रदक्षिणा करूँगा, ऐसा कहते हुए संकल्प करके प्रदक्षिणा करे और प्रार्थना करे—हे भगवान् शिव ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए एवं सभी पापों की शान्ति के लिए पञ्चक्रोशी यात्रा करूँगा। यह कहकर मौन धारण करके ढुण्ढिराज गणेशजी से आज्ञा मांगे।

ढुण्ढिराज गणेशान महाविघ्नैक नाशनः।
पञ्चक्रोशस्य यात्रार्थं देह्याज्ञा कृपयाविभो ॥

अर्थात् महाविघ्नों का नाश करने वाले ढुण्ढिराज गणेशजी मुझे पञ्चक्रोशी की यात्रा के लिए कृपया आज्ञा दीजिये।

१. पहले दिन की यात्रा (मार्ग के देवता तथा मणिकर्णिका से कर्दमेश्वर तक की यात्रा)—मणिकर्णिकेश्वर, सिद्ध विनायक, गंगाकेशव, ललितादेवी, जरासन्धेश्वर, सोमेश्वर, दालभेश्वर-शूलटंकेश्वर, वाराहेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, बन्दीदेवी, सर्वेश्वर केदारेश्वर, हनुमदीश्वर, लोलार्केश्वर, अर्कविनायक, असी-संगमेश्वर, दुर्गाकुण्डविनायक, दुर्गादेवी का दर्शन तथा प्रार्थना करके प्रणाम करे और आज्ञा माँगकर आगे चले।

जयदुर्गे महादेवी जयकाशी निवासिनी।
क्षेत्रविघ्नहरे देवि पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥

दुर्गे देवि ? काशी निवासिनी तुम्हारी जय हो, क्षत्र के विघ्नों को हरने वाली तुम्हारी पुनर्दर्शन हो। ऐसा कहकर कर्दमेश्वर में जाय। वहाँ कर्दमेश्वर, सोमनाथ, विरूपाक्षी, नीलकण्ठ आदि का दर्शन कर वहीं रात्री में विश्राम करे।

२. दूसरे दिन की यात्रा—प्रातःकाल उठकर, नित्यकर्म स्नानादि से निवृत्त होकर, कर्दमेश्वरजी से प्रार्थना करके आज्ञा ले।

कर्दमेशमहादेव कशीवासो जन प्रिय।
त्वत्पूजनान्महादेव पुनर्दर्शन मस्तुते ॥

अर्थात्—हे कर्दमेश्वर महादेव काशीवासी जनों के प्रिय। आपके पूजन से हेमहादेव ? फिर आपका दर्शन हो।

कर्दमेश्वर से भीमचण्डी के मार्ग के देवगण—नागनाथ, (अमरा गाँउ में) चामुण्डा देवी, मोक्षेश्वर, करुणेश्वर, (वडे गाऊँ) वीरभद्रेश्वर, विकटाक्ष दुर्गा (देल्हन गाऊँ में) उन्मत्त भैरव, नीलगण, कालकूट गण, विमलदुर्गा, महादेव, नन्दिकेश्वर, भृङ्गिरिटिगण, यक्षेश्वर, (चकमालाता देहू में) विमलेश्वर, मोक्षेश्वर, ज्ञानेश्वर, (प्रयागपुर में) अमृतेश्वर, (आसवारी गाँऊ) गन्धर्वसागर, भीमचण्डीदेवी का दर्शन दूध से स्नान करावे। चण्डविनायक, रविरक्ताक्ष, गन्धर्व नरकार्णवतारण, शिव का दर्शन करके रात्री में यहीं विश्राम करे।

३. तीसरे दिन की यात्रा—प्रातः उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर रामेश्वरम् यात्रा करने के पूर्व भीमचण्डी देवी से प्रार्थना करे आज्ञा लेकर यात्रा करे।

भीमचण्डी प्रचण्डानि मम विघ्न विनाशय।
नमोस्तेस्तु गमिष्यामि पुनर्दर्शनमस्तुले ॥

अर्थात्—हे भीमचण्डी प्रचण्डरूपवाली मेरे दुःख का नाश करो तुम्हें नमस्कार है। मैं जाता हूँ फिर तुम्हारे दर्शन हों। कहकर चल दे।

भीमचण्डी से रामेश्वरम् के मार्ग के देवता—एक पादगण, (कचनार गाँउ) महाभीम (हरे का तलाउ) भैरवनाथ, भैरवी देवी, (हरसोंम गाँउ) भूतनाथ (दीन दयालपुर) सोमनाथ (लगोटिया हनुमान। सिन्धु रावेतीर्थ) सिन्धु सागर तीर्थ, कालनाथ, कपर्दीश्वर, (जन्सा गाँउ), कामेश्वर, बीरभद्र गण, चारुमुख गण (चौखण्डी गाँऊ)। गणनाथेश्वर (भटौली गाँऊ) देहली विनायक, षोड़श विनायक, उद्दण्ड विनायक (भुइली गाँऊ में) उत्कलेश्वर (हीरामणिपुर)। रुद्राणीदेवी (तबोभूमि) वरुणा नदी, रामेश्वर का दर्शन तथा सफेद तिल से पूजन करे। सोमनाथेश्वर, भरतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, शत्रुघ्नेश्वर, द्यावाभूमीश्वर, नहुषेश्वर

आदि का दर्शन करके रात्री में वही विश्राम, करे। प्रातः उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर (रामेश्वरजी से आज्ञा लेकर प्रार्थना करके यात्रा करे।

श्रीरमेश्वर रामेण पूजितस्त्वं सनातनः।
आज्ञां देहि महादेव पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥

अर्थात्—हे रामेश्वर महादेव ! राम द्वारा पूजित, आप सनातन है। फिर आपका दर्शन प्राप्त हो मैं नमस्कार करता हूँ, मुझे आज्ञा दें।

४. चौथे दिन की यात्रा—रामेश्वरम् से शिवपुर या कपिलधारा के मार्ग के देवगण। वरुणा का पुल पार करे असंख्यात तीर्थ (असंख्यात लिङ्ग है) वरुणा पार करके (भुलनीवारी), देव सन्धेश्वर (कारोया गाँउ) हरहुआ के जंगल में। पाशपाणिविनायक, (सरदार वजार) शिवपुर में—पाच पाण्डवों के स्यापित, पञ्चमहादेव का दर्शन करे। याहाँ रात्री में विश्राम करना चाहें तो कर सकते हैं। पुनः सुबह नित्य कर्म करके यात्रा करे परन्तु याहाँ रात्री में रुकने का विधान नहीं है। चलने में असमर्थ लोग यहाँ रात्रि में विश्राम करते हैं। यहाँ धर्मशलयें बनी हैं।

५. दिन की यात्रा—शिवपुर से कपिल धारा के मार्ग के देवतागण। पृथ्वीश्वर महादेव, (पाण्डेयपुर) चौराहा से दक्षिण मार्ग में खजूरी गाँउ सुधाकर रोड (स्वर्ग भूमि पर स्थित है)। यूपसरोवर तीर्थ, सोनातलाऊ, वृषभध्वज तीर्थ, वृषभ ध्वजेश्वर महादेव का दर्शन करके यहाँ शिव गया में खीर का पिण्डदान तथा तपर्ण श्राद्ध भोजनादि करके रात्री में विश्राम करे। प्रातः उठकर नित्य नियमों से निवृत्त होकर यात्रा करते समय वृषभध्वज महादेवजी से आज्ञा लेते हुए प्रार्थना करे—

वृषभध्वजदेवेश पितृणां मुक्तिदायक।
आज्ञांदेहि महादेव पुनर्दर्शनमस्तुते ॥

अर्थात्—हे शिव ? पितरों को मुक्ति देने वाले महादेव, पुनः मुझे तुम्हारा दर्शन हो। हे वृषभध्वज मुझे आज्ञा दीजिये।

५. (यह भी) पाँच दिन की यात्रा—कपिलधारा से मणिकर्णिका के मार्ग के देव गण—ज्वाला नृसिंह, (कोटा गाँउ) वरुणा संगम, आदिकेशव, संगमेश्वर, खर्वविनायक, मन्दिर के बाहर गंगा किनारे-किनारे जउ छीटे जाते हैं। प्रह्लादेश्वर, (प्रह्लादघाट) त्रिलोचन महादेव, पञ्चगंगा तीर्थ, वेणीमाधव, गभस्तीश्वर, मंगलागौरी (लक्ष्मण बालाघाट) वसिष्टेश्वर, वामदेवेश्वर (संकटाघाट) पर्वतेश्वर, (सिन्धियाघाट) महेश्वर (मणिकर्णिका) सिद्धिविनायक, सप्तावरण विनायकः तथा मणिकर्णिका आदि का दर्शन करके स्नान करने के बाद, श्री काशी विश्वनाथजी में जाय। अन्नपूर्णा ढुण्ढिराज, दण्डपाणि, पञ्चविनायक के दर्शन, पूजन करके ज्ञानवापी के पास मुक्ति मण्डप में जाकर पञ्चक्रोश में स्थित सम्पूर्ण देवताओं का स्मरण करके अक्षत छोड़ते हुए (पण्डा) से संकल्प छुड़ावे और प्रार्थना करे कि—

पञ्चकोशस्य यात्रेयं यथा शक्त्यामयाकृता ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादात् उमापते ॥

अर्थात्—हे उमापति महादेव ! पञ्चकोशी की यात्रा जिस प्रकार कही गयी है, वह मैंने किया। जो उसमें त्रुटो रह गयी हो वह आपकी कृपा प्रसाद से पूर्ण होना चाहिये। कालभैरव तथा शाक्षीविनायक का भी दर्शन करना आवश्यक है। तत् पश्चात् अपने-अपने स्थान में जावें दानादि कर्म ब्राह्मणादि को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार पञ्चक्रोशी यात्रा का फल पूर्ण रूप से मिलता है। (का० ख०)

॥ इति पञ्चक्रोशी यात्रा ॥

अथ तृतीय खण्ड

"विविध रत्नसंग्रह"

विविधानि च रत्नानि संगृहीतानि वै मया।
पठनं मननं कृत्वा नर प्राप्नोति सद्गतिम्॥

संस्कृत में विविध स्तोत्र रत्नों का संग्रह किया गया है। इन स्तोत्रों के पाठ से अनेक कार्यों की सिद्धि तथा मनोरथों की पूर्ति होती है।

१८ पुराणों का मंगलाचरण करके अन्य स्तोत्रों का भी संग्रह किया गया है।

(१) शिव पुराण का मंगल—

ॐ आद्यन्त मंगलमजात समान भाव-
यायेतमीशमजरामरमात्म देवम्।
पञ्चाननं प्रवल पञ्चविनोद शीलं
स भावये मनसि शंकरमम्बिकेशः॥ १॥

(२) श्रीमद्भागवत् महापुराण का मंगल—

ॐ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थे स्वभिज्ञः स्वराट्-
ते ने ब्रह्महृदा य आदि कबये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ २॥

(३) ब्रह्म पुराण का मंगल—

ॐ यस्मात् सर्वमिदं प्रपञ्चरचितं, मायाजगज्जायते
यस्मिन् तिष्ठति याति चास्तसमये, कल्पानुकल्पे पुनः।

यं ध्यात्वामुनयः प्रपञ्चरहितं, विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवम्
तं वन्दे पुरुषोत्तमस्यममलं, नित्यं विभुं निश्चलम् ॥ ३ ॥

पुनः—यं ध्यान्ति वुधाः समाधि समये, शुद्धं वियत्सन्निभम्
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं, सर्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्च रहितं, ध्यानैकगम्यं विभुम्
तं संसार विनाश हेतुमजरं, वन्देहरिं मुक्तिदम् ॥ ४ ॥

(४) स्कन्द पुराण का मंगल—

यस्यज्ञाया जगत् श्रष्टा विरञ्चि पालको हरिः ।
संहर्ता कालरूपाख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥ ५ ॥

पुनः—प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिः ॥ ६ ॥

(५) पद्मपुराण का मंगल—

ॐ स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकर, क्षोभ संजात फेनं
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्र मुख्यैः ।
ॐ कारालंकृतेन त्रिभुवन गुरुणा, ब्रह्मणा दृष्टि भूतं
संभोगा भोग रम्यं जलमशुभहरं, पौस्कर वः पुनातु ॥ ७ ॥

(६) वायु पुराण का मंगल—

ॐ जयति परासर सूनुः सत्यवती हृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्याऽऽस्य कमलगलित वाङ्मयममृतंजगत्पिवति ॥ ८ ॥

(७) ब्रह्म वैवर्त्त पुराण का मंगल—

ॐ गणेश ब्रह्मेश सुरेश शेषा, सुराश्च सर्वे मनवो मुनिन्द्रैः ।
सरस्वती श्रीःगिरिजादिकांश्च, नमन्ति देवाप्रणमन्ति तं विभुम् ॥

पुनश्च—स्थूलस्तनुं विदधतं त्रिगुणं विराजं
विश्व विलोम विवरेषु महान्त माद्यम् ।

सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मं
नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥१०॥

पुनरपि—अमृत परमपूर्णं भारती कामधेनु-
श्रुतिगण कृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह ।
अनतरुचिपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत्
पिवत पिवत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥११॥

(८) मार्कण्डेय पुराण का मंगल—

ॐ यद्योगिभिर्भवभयार्ति विनाश योग्य-
मासाद्य वंदितमतीव विविक्त चित्तैः ।
तद्वत् पुनातु हरिपादसरोज युग्म
आविर्भवेत् क्रमविलङ्घित भूर्भुवः स्वः ॥१२॥

पुनः—पायात् स वः सकल कल्मष भेददक्षः
क्षीरोदकुक्षिफणिभोग निविष्ट मूर्त्तिः ।
श्वासावधूत सलिलोत्फणिका कराल
सिन्धु प्रनृत्यमिव यस्य करोति संगात् ॥१३॥

(९) लिङ्ग पुराण का मंगल—

ॐ नमोरुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रधान पुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥१४॥

(१०) कुर्म्म पुराण का मंगल—

ॐ नमस्कृत्य प्रमेयाय विष्णवे कुर्म्म रूपिणे ।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयोनिना ॥१५॥

(११) मत्स्य पुराण का मंगल—

प्रचण्ड ताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः ।
पातालादुत्पतिष्णो मकरसतयो यस्य ॥१६॥

(१२) अग्नि पुराण का मंगल—

ॐ श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् ।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ॥१७॥

(१३) वामन पुराण का मंगल—

ॐ त्रैलोक्य राज्यमाच्छिद्य बलेरिन्द्राय यो ददौ।
नमस्तस्मै सुरेशाय सदा वामन रूपिणे ॥१८॥

(१४) नारद पुराण का मंगल—

ॐ वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्द मन्दिरम्।
उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम् ॥१९॥

(१५) विष्णु पुराण का मंगल—

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥२०॥

(१६) वराह पुराण का मंगल—

ॐ नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते ॥२१॥

पुनः—दंष्ट्राग्रेणोद्धृतागौरुदधिपरिवृतः पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत् प्राग्बृहदुरुवपुषाऽन्तरूपेण येन
सोऽयं कंसासुरारि मुर नरकदशास्यन्त कृत् सर्वसंस्थः
कृष्णोविष्णुः सुरेशो नादतु मम रिपूनादिदेवोवराहः ॥२२॥

(१७-१८) गरुड़ पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण का मंगल—

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नोत्तमम्।
देवीं रसस्वतीं व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥२३॥

(इति पुराणानां मङ्गलानि)

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥
श्रुयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवाऽवधार्यताम्।
आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

(इति)

मंगलम्—महापुरुष देवाय साक्षीणे परमात्मने ।
सुग्रीव मित्ररूपाय रामभद्रायते नमः ॥

शंकरकृत—"श्रीरामचन्द्राष्टकम्"

शिवउवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं, सीता कलत्रं नवमेघ गात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं, श्रीरामचन्द्रंसततं नमामि ॥ १ ॥

संसारसारं निगमप्रचारं, धर्मावतारं हृतभूमि भारम् ।
सदाऽविकारं सुखसिन्धुसारं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि॥ २ ॥

लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं, लंकाविनाशंभुवन प्रकाशम् ।
भूदेव वासं शरदिन्दुहासं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ३ ॥

मन्दारमालं वचनेरसालं गुणैर्विशालं हृतसप्त तालम् ।
क्रव्याद कालं सुरलोक पालं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ४ ॥

वेदान्तगानं सकलै समानं, हृतारि मानं त्रिदश प्रधानम् ।
गजेन्द्रथानं विगतावसानं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ५ ॥

श्यामाभिरामं नयनाभिरामं, गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्त कामं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ६ ॥

लीला शरीरं रणरङ्ग धीरं, विश्वैकसारं रघुवंश हारम् ।
गभीरनादं जीतसर्ववादं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ७ ॥

खले. कृतान्तं स्वजनेविनीतं, सामोपगीतं मनसा प्रतीतम् ।
रागेणगीतं वचनादतीतं, श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रस्य वराष्टकं त्वां मयेरितं देवि ! मनोहराये ।
पठन्ति शृण्वन्ति गृणन्ति भक्त्या, तेस्वीयकामान्प्रलभन्ति नित्यम् ॥९॥

(इति आनन्द रामायणान्तर्गत रामचन्द्राष्टकम्) ।

मंगलम्—रामचन्द्रस्य वामाङ्के शोभितां जनकात्मजाम् ।
जगत्पूज्यां शुभाङ्गीं त्वां नमामि रामवल्लभाम् ॥

ब्रह्माकृत—'श्रीसीतानवक स्तोत्रम्'

जनकजात्मजे राघवप्रिये, कनकभासुरे भक्तपालिके ।
दशरथात्मजप्राणवल्लभे, तवपदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ १ ॥

मूलकासुर प्राण घातिके, रामरक्षिते रामसेविते ।
राममोहिनी स्यन्दनस्थिते, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तुमे ॥ २ ॥

राममञ्चकाधिष्ठिते रमे, राम वीजिते रामलालिते ।
राम संस्तुते रामरञ्जिते, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ ३ ॥

लोकपावनी श्री रजेवरे, भूमिकन्यके लोक पालिके ।
पद्मलोचने धरात्मजेपरे, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तुमे ॥ ४ ॥

कञ्जलोचने नागगामिनी, स्वीयसत्सुखे रम्यरूपिणि ।
रुक्म भूषिते मौक्तिकाङ्किते, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तुमे ॥ ५ ॥

जलरुहानने चित्र वासिनी, त्वमवसिसदा स्वीयसेवकान् ।
मुनिरिपूनसदा दुःखदायिके, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तुमे ॥ ६ ॥

त्वत्मुखेक्षणाद्राक्षसांपतिः, प्राप संक्षयं रामसत्प्रिये ।
त्वत्दृगेक्षणाल्लज्जितामृगी, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ ७ ॥

कुशलवाम्बिके जलरुहानने, जलरुहेक्षणेपापदाहिके ।
मधुरसुस्वने नूपुर सुस्वने, त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥ ८ ॥

घ्राणमुत्तमं तेस्मितानने, तेऽधरः शुभोविम्बसन्निभः ।
अद्य वै त्वया मूलकासुरो, मारितोरणे तारिता वयम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मणेरितं नवकमुत्तमं, भास्करोदये पठतिः य पुमान् ।
सर्वं वाञ्छितं लभति सोत्र ना, प्राप्नुयात् सुखं रामसन्निधिम् ॥ १० ॥

(इति आनन्द रामायणान्तरगत सीता नवमम्)

मंगलम्—रामचन्द्रं जगत् पूज्यं रघुवंश विभूषम् ।
लोकानन्द प्रदातरं तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥

पक्षीकृत्—'श्रीरामनवक स्तोत्रम्'

जयतुराघवो जानकीयुतो, जयऽखिलेश्वर राजकेश्वरः ।
दशरथात्मजो लक्ष्मणा ग्रजो, जयतु नापति ताटिकान्तकः ॥ १ ॥

जयतु कौशिकस्याध्वरंगतो, जयतु राक्षसां मारकोमहान् ।
जयतु गौतमऽहल्यया स्तुतो, जयतु जानकीतात मानितः ॥ २ ॥

जयतु नः पतिश्चापखण्डनो, जनकजावरोन्मुक्त मालया ।
नृपसभाङ्गणे कौशिकानुगः, परम शोभितश्चातिर्हर्षित ॥ ३ ॥

जयतु भूमिजांघ्रयोस्तदा मुदा, निज करोत्पलेस्थाप्यराघवः ।
कमल हस्तके नाकरोन्नति, स रघुनन्दनो पातु नः सुखम् ॥ ४ ॥

जयतु भूमिजालिङ्गितो महान्, जनमनोहर चातिशोभनः ।
परशुरामदं धृत्य वै धनु, निजपितुर्तदाऽदर्शयन् बलम् ॥ ५ ॥

जयतु कैकयी प्रेरितोवनं, जयतु सीतया भोग कृच्चिरम् ।
जयतु पर्वतेवास कृच्चिरं, जयतु योत्रिणा पूजितो वने ॥ ६ ॥

जयतु ते विराधस्य घातकृत्, जयतु दूषणादि प्रमर्दनः ।
जयतु यो मृगं मोचयन् भवात्, जयतु यः कबन्धक्षणाज्जहौ ॥७॥

जयतु वालिहा सेतु कारको, जयतुरावणादिक मर्दकः ।
जयतु स्वं पदं प्रापसीतया, जयतुमंगल स्नान कृन्मुदा ॥ ८ ॥

जयतु वाक्यतो भूसुरस्य यः, सकल भूतल पर्यटन् चिरम् ।
जयतु याग कृल्लोक शिक्षया, जयतु जानकी रञ्जयन् स्थितः ॥९॥

रघुवरस्य यत्पक्षिभिकृतं, नवकमुत्तमं यः पठिष्यति ।
तपन निर्गमे भक्ति तत्परो, निजमनार्थितं संगमिष्यति ॥१०॥

(इति आनन्द रामायणान्तर्गतराम नवकम्)

मंगलम्—नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे परमात्मने ।
समस्त क्लेशनाशाय व्यापकाय नमोनमः ॥

"समस्त पापनाशक स्तोत्रम्"

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकार गतिं हरिम् ॥ १ ॥

चित्तस्थमीश - मव्यक्त - मनन्तम - पराजितम् ।
विष्णुमीड्यमशेषेण अनादिनिधनं विभुम् ॥ २ ॥

विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धि गतश्च यत् ।
यच्चाहंकारगोविष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥ ३ ॥

करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेवहि चिन्तिते ॥ ४ ॥

ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् ।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥ ५ ॥

जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः ।
हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥ ६ ॥

सर्वेश्वर सर्वविभो परमात्मन्नधोक्षज ।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तुते ॥ ७ ॥

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तुते ॥ ८ ॥

यन्मयाचिन्तितं दुष्टं स्वचित्त वसवर्तिना ।
अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युतः ॥ १० ॥

यथा पराह्ने सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥ ११ ॥

जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥ १२ ॥

शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥ १३ ॥

यद्भुञ्जन् यत्स्वपंस्तिष्ठन् गच्छन् जाग्रद् यदास्थितः ।
कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥ १४ ॥

यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनि नरका वहम् ।
तद् यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥ १५ ॥

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् ।
तस्मिन् प्रकीर्तिते विष्णो यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥ १६ ॥

यत् प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादि वर्जितम् ।
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत् सर्वंशमयत्वघम् ॥ १७ ॥

पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेत् शृणुयादपि ।
शारीरैः मानसैः वाक्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

सर्वपाप ग्रहादिभ्यो याति विष्णो परं पदम् ।
तस्मात् पापेकृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥ १९ ॥

प्रायश्चित्त मघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम् ।
प्रायश्चित्तैः स्तोत्र जपै व्रंतैर्नश्यतिपातकम् ॥ २० ॥

(इतिश्री विष्णोः समस्त पापनाशक स्त्रोत्रम् ॥)

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः, स्वर्गं च धर्मेण नर प्रयाति ।
आयुश्च कीर्तिञ्च तपश्च धर्मं, धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥

मंगलम्—अहल्योद्धारकारिणं पतितोद्धारकारिणम् ।
मुनीनां सुखदं दिव्यं रामचन्द्रं नतोऽस्म्यहम् ॥

अहल्याकृत श्रीराम स्तोत्रम्

(पापक्षयार्थं पुत्र प्राप्तार्थं (अहल्योवाच)

अहोकृतार्थास्मिजगन्निवास ते, पादाब्ज संलग्न रजकणादहम् ।
स्पृशामियत्पद्मजशंकरादिभि, विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥ १ ॥

अहोविचित्रं तव रामचेष्टितं, मनुष्य भावेन विमोहितं जगत् ।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः, सम्पूर्ण आनन्द मयोतिमायिकः ॥ २ ॥

यत्पादपंकजपराग पवित्र गात्रा,
भागीरथी भवविरञ्चिमुखान्पुनाति ।
साक्षात् स एव मम दृग्विषयोयदास्ते
किं वर्ण्यते मम पुराकृत भागधेयम् ॥ ३ ॥

मर्त्यावतारे मनुजा कृतिं हरिं, रामाभिधेयं रमणीय देहिनम् ।
धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामिनित्यं न परान् भजिष्ये ॥ ४ ॥

यत्पाद पंकजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं,
यन्नाभिपंकजभव कमलासनश्च ।
यन्नामसाररसिकोभगवान् पुरारि,
स्तं रामचन्द्रमनीशंहृदिभावयामि ॥ ५ ॥

यस्यावतार चरितानि विरञ्चिलोके,
गायन्ति नारद मुखाभवपद्मजाद्याः ।
आनन्दजाश्रुपरिषिक्त कुचाग्रसीमा,
वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

सोऽयंपरात्मापुरुषपुराण, एक स्वयं ज्योतिरनन्त आद्यः ।
माया तनु लोकविमोहनीयं, धत्तेपरानुग्रह एष रामः ॥ ७ ॥

अयं हि विश्वोद्भव संयमाना, मेकस्वमाया गुणविम्बतो यः ।
विरञ्चिवृष्णीश्वर नामभेदान्, धत्तेस्वतन्त्रः परिपूर्णआत्मा ॥ ८ ॥

नमोस्तुते रामतवांघ्रिपंकजं, श्रियाधृतं वक्षसिलालितंप्रियात् ।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयंपुरा, ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमान वर्जितैः ॥ ९ ॥

जगतामादिभूतस्त्वं जगत्तत्त्वं जगदाश्रयः ।
सर्वभूतेषु - संयुक्त एकोभातिभवान् परः ॥ १० ॥

ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषय पुमान् ।
वाच्यवाचक भेदेन भवानेव जगन्मयः ॥११॥

कार्य कारण कर्तृत्व फलसाधन भेदतः ।
एको विभाति रामस्त्वं मायया वहुरूपया ॥१२॥

त्वन्माया मोहित धियस्त्वं न जानन्ति तत्वतः ।
मानुषं त्वांभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥१३॥

आकाशवत्त्वं सर्वत्र वहिरन्तर्गतोमलः ।
असङ्गोह्यचलोनित्यः शुद्धो वुद्धः सदव्यय ॥१४॥

योषिन्मूढा हमज्ञाते तत्त्वं जाने कथं प्रभो ।
तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्य धीः ॥१५॥

देव मे यत्र कुत्रपि स्थिताया अपिसर्वदा ।
त्वत्पाद कमलेसक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥१३॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्तेऽस्तु हृषिकेश नारायण नमोस्तुते ॥१७॥

भवभय हरमेकं भानुकोटि प्रकाशं
करधृत शर चापं कालमेधा वभासम् ।

कनकरुचिर वस्त्रं रत्नवत् कुण्डलाढ्यं
कमलविषदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥१८॥

स्तुतैवं पुरूषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितः।
परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौपतिम् ॥१९॥
अहल्याया कृतं स्तोत्रं यः पठेत् भक्ति संयुतः।
स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परंब्रह्माधिगच्छति ॥२०॥
पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदिनिधाय च।
सस्वत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति रामचन्द्र प्रभावतः ॥२१॥

(इति राम स्त्रोत्रम्)

निरावलम्बस्य ममावलम्बं विपाटिताशेष विपत्कदम्बम्।
मदीय पापाचल पातशम्वं प्रवर्ततां वाचि सदैव बम् बम् ॥

मंगलम्—हरिहर स्वरूपाय परव्रह्म स्वरूपिणे।
पुनर्जन्म विनाशाय प्रणमामि परं शिवम् ॥

"पुनर्जन्म नाशकं स्त्रोत्रम्"

(धर्मराज उवाच)

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे ?
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दनवासुदेव ?
त्याज्या भटा य इति संतत मानमन्ति ॥ १ ॥
गंगाधरान्तकरिपो हर नील कण्ठ ?
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्ज पाणे ?
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश ॥ त्याज्या० २ ॥
विष्णोर्नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे ?
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड़ ?
नारायणासुर निर्वहण शार्ङ्गपाणे ॥ त्याज्या० ३ ॥

मृत्युञ्जयोग्र विषमेक्षण कामशत्रो ?
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुद नील शौरे ?
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ ।। त्याज्या० ४ ।।

लक्ष्मी पते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य ?
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे ।
आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ ।। त्याज्या० ५ ।।

सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देव देव ?
ब्रह्मण्यदेव गरुड़ध्वज शूल पाणे ।
त्र्यक्षोरगाभरण वालमृगाङ्क मौले ।। त्याज्या० ६ ।।

श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारें ।
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ ?
चाणूर मर्दन हृषिकपते मुरारे ।। त्याज्या० ७ ।।

शूलिन् गिरीशरजनीशकलावतंस ?
कंश प्रणाशन सनातन केशिनाश ?
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे ।। त्याज्या० ८ ।।

गोपीपते यदुपते वसुदेव सूनो ?
कर्पुरगौर वृषभध्वज भालनेत्र ?
गोवर्द्धनोद्धरण धर्मधूरीण गोप ।। त्याज्या० ९ ।।

स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे ।
कृष्णानिरुद्ध कमलावर कल्मषारे ।
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप ।। त्याज्या० १० ।।

अष्टोत्तराधिक शतेन सुचारु नाम्नां ।
संदर्भितां ललित रत्न कदम्बकेन ।
सन्नामकां दृढगुणां द्विजकण्ठगां यः ।
कुर्यादिमां स्रजमहोसयमं न पश्येत् ।।१०।।

(अगस्तिरुवाच)

यो धर्मराज रचितां ललित प्रबन्धां
नामावलीं सकल कल्मष बीज हन्त्रीम् ।
धीरोत्र कौस्तुभभृतः शशि भूषणस्य
नित्यं जपेत् स्तन रसं स पिवेन्नमातुः ॥११॥

(इति पुनर्जन्म नाशक स्त्रोत्रम्)

मंगलम्—यज्ञ कर्म कल्पवासः मकरे माघ संयुते ।
भवन्ति यस्य संप्राप्त्या प्रयागं तंनमास्यहम् ॥

"श्री प्रयागाष्टकम्"

सुर मुनि दिति जेन्द्रैः सेव्यते योऽस्त तन्द्रै-
र्गुरुतर दुरितानां का कथा मानवानाम् ।
सभुवि सुकृत कर्तुर्वाञ्छिता वाप्ति हेतु-
र्जयति विजित याग तीर्थ राज प्रयागः ॥ १ ॥
श्रुति प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं, पुराण मप्यत्र परं प्रमाणम् ।
यत्रास्ति गंगा यमुना प्रमाणं, स तीर्थ राजो जयति प्रयागः ॥ २ ॥
न यत्र योगाचरण प्रतीक्षा, न यत्र यज्ञेष्टि विशिष्ट दीक्षा ।
न तारक ज्ञान गुरोरपेक्षा, स तीर्थ राजो जयति प्रयागः ॥ ३ ॥
चिरं निवासं न समीक्षते यो, ह्युदारचित्तः प्रददाति कामान् ।
यः कल्पितार्थाश्चददाति पुंसां, स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ४ ॥
तीर्थावली यस्य तु कण्ठ भागे, दानावली वल्गति पादमूले ।
व्रतावली दक्षिणबाहुमूले, स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ५ ॥
यत्राप्लुतानां न यमो नियन्ता, यत्र स्थितानां सुगति प्रदाता ।
यत्राश्रितानाममृत प्रदाता, स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ६ ॥

सितासिते यत्र तरङ्ग चामरे, नद्यौविभाते मुनिभानुकन्यके।
नीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ७ ॥

पुर्यं सप्त प्रसिद्धाः पतिवचनरता तीर्थराजस्य नार्यो-
नैकव्येनाति हृद्या प्रभवति च गुणैः काशते ब्रह्म यस्याम्।
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदाने नियुक्ता
येन ब्रह्माण्डमध्ये सजयति सुतरां तीर्थराज प्रयागः ॥ ८ ॥

(इति श्री मत्स्य पुराणे प्रयागाष्टम्)

तुलसी महात्म्य

(श्री तुलसी कवच)

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अस्य श्रीतुलसी कवच स्तोत्र मन्त्रस्य श्रीमहादेव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः।
श्रीतुलसी देवता, मन ईप्सित कामना सिध्यर्थे जपेविनियोगः॥

तुलसी श्रीमहादेवी नमः पङ्कज धारिणि।
शिरो मे तुलसी पातु भालं पातु यशस्विनी ॥ १ ॥

दृशो मे पद्मनयना श्रीसखीश्रवणे मम।
घ्राणं पातु सुगन्धा मे मुखं च सुमुखी मम ॥ २ ॥

जिह्वा मे पातु शुभदा कण्ठं विद्यामयी मम।
स्कन्धौ कल्हारिणी पातु हृदयं विष्णु वल्लभा ॥ ३ ॥

पुण्यदा मे पातु मध्यं नाभि सौभाग्यदायिनी।
कटिं कुण्डलिनी पातु उरु नारद वन्दिता ॥ ४ ॥

जननी जानुनिपातु जंघे सकल वन्दिता।
नारायणप्रिया पादौ सर्वदा सर्वसाक्षिणी ॥ ५ ॥

संकटे विषमेदुर्गे भये वादे महाहवे।
नित्य हि सन्ध्योः पातु तुलसी सर्वतःसदा ॥ ६ ॥

इतीदं परमं गुह्यं तुलस्या कवचामृतम्।
मर्त्यानाममृतार्थायभीतानामभयायच ॥ ७ ॥

मोक्षाय च मुमुक्षुणां ध्यायिनां ध्यानयोगकृत् ॥ ८ ॥

वश्यायवश्य कामानां विद्यायैवेदवादिनाम्।
द्रविणाय दरिद्राणां पापीनां पापशान्तये ॥ ९ ॥

अन्नाय क्षुधितानाञ्च स्वर्गाय स्वर्गमिच्छताम्।
पशव्यं पशुकामानां पुत्रदं पुत्रकांक्षिणाम् ॥ १० ॥

राज्याय राज्यभ्रष्टानामशान्तानांप्रशान्तये।
भक्त्यार्थं विष्णुभक्तानां विष्णौ सर्वान्तरात्मनि ॥ ११ ॥

जाप्यं त्रिवर्गसिध्यार्थं गृहस्थेन विशेषतः।
उद्यन्तं चण्डकिरणमुपस्थाय कृताञ्जलि ॥ १२ ॥

तुलसी काननेतिष्ठन्नासीनो वा जपेदिदम्।
सर्वान्कामान वाप्नोति तथैव मम सन्निधिम् ॥ १३ ॥

मम प्रियकरं नित्यं हरिभक्ति विवर्द्धनम्।
या स्यात् मृत प्रजा नारी तस्या अङ्गंप्रमार्जयेत् ॥ १४ ॥

सा पुत्रंलभते दीर्घंजीवितं चप्यरोगिणम्।
वन्ध्यांया मार्जयेदङ्गं कुशैर्मत्रेण साधकः ॥ १५ ॥

सापिसम्वत्सरादेव गर्भंधत्ते मनोहरम्।
अश्वत्थेराजवश्यार्थी जपेदग्नेः सुरूपभाक् ॥ १६ ॥

पलाशमूले विद्यार्थी तेजोर्थ्येऽभिमुखोरविः।
कन्यार्थे चण्डिकागेहे शत्रुहत्यैगृहे मम ॥ १७ ॥

श्रीकामो विष्णुगेहे च उद्याने स्त्रीवशाभवेत् ।
किमत्र वहुनोक्तेन शृणु सैन्येश तत्वतः ॥ १८ ॥
यं यं काममभिध्यायेत् तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
मम गेहगतस्त्वं तु तारकस्य वधेच्छया ॥ १९ ॥
जपन् स्तोत्रं च कवचं तुलसी गतमानसः ।
मंगलात्तारकं हन्ता भविष्यति न संशय ॥ २० ॥
इति श्री ब्रह्माण्ड पुराणे तुलसी कवचं सम्पूर्णम् ।

कालभैरवाष्टकम्

देवराजसेव्यमानपावनांघ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम् ।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥१॥

भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम् ।
कालकालमंबुजाक्षमक्षशूलमक्षरं । काशिका० ॥२॥

शूलटंकपाशदण्डपाणिमादिकारणम्
श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयं
भीमविक्रमं प्रभुं विचित्रतांडवप्रियं । का० ॥३॥

भुक्तिमुक्तिदायकं प्रशस्तचारुविग्रहं
भक्तवत्सलं स्थितं समस्त लोकविग्रहं
विनिक्वणन्मनोज्ञहेमकिंकिणीलसत्कटि । का० ॥४॥

धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं
कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकंविभुम्
स्वर्णवर्णशेषपाशशोभितांगमङ्गलं । का० ॥५॥

रत्नपादुकाप्रभाभिरामपादयुग्मकं
नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम्
मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रमोक्षणं । का० ॥६॥

अट्टहासभिन्नपद्मजांडकोशसंतति
दृष्टिपातनष्टपापजालमुग्रशासनम्
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकंधरं । का० ॥७॥

भूतसंघनायकं विशालकीर्तिदायकं
काशिवासलोकपुण्यपापशोधकं विभुम्
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पत्ति । का० ॥८॥

कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं
ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुण्यवर्धनम् ।
शोकमोहदैन्यलोभकोपतापनाशनम्
ते प्रयान्ति कालभैरवांघ्रिसंनिधिं ध्रुवम् ॥९॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यं विरचितं कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

"दीक्षा ग्रहण महात्म्य तथा सत् गुरु महात्म्य"

दीक्षा ग्रहण करने का चारों वर्णों के लोगों का अधिकार है। बिना दीक्षा के कोई धार्मिक कार्य फलदायक नहीं होते। जैसे पत्थर से मोती नहीं उत्पन्न होते। दीक्षा लेने से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो लोग दीक्षा लिये बिना मर जाते हैं वे रौरव नरक में पड़ते हैं। कोई मनुष्य गुरुमुख हुए विना स्वयं मन्त्र जप करता है उसको फल नहीं मिलता दोष लगता है। अपने जन्म नक्षत्र में राशि और नाम का चक्र ठीक मिले तो दूसरे चक्र में मन्त्र लेना आवश्यक नहीं। जिस मन्त्र में पिस २० अक्षर से अधिक अक्षर हो वह सिद्ध नहीं होता। सब महीनों में चैत्र का महीना मन्त्र दीक्षा लेने के लिये उत्तम है। वैशाख में मन्त्र दीक्षा लेने से रत्नों की प्राप्ति ज्येष्ठ तथा आषाढ में दीक्षा (मन्त्र) लेने से अपने और भाई को कष्ट होता है। श्रावण में मन्त्र लेने से मनोरथ की प्राप्ति होती है। भादो में मन्त्र लेने से पुत्र को कष्ट होता है। कुवार में मन्त्र लेने से धन की प्राप्ति होती है। कार्तिक में मन्त्र लेने से सिद्धि तथा अगहन में मन्त्र लेने से शत्रुभय और फाल्गुन में मन्त्र लेने से वुद्धि बढ़ती है। उक्त महीनों की गणना संक्रान्ति से करना चाहिये। मन्त्र लेने के लिए वार—रवि, बुध, वृहस्पति एवं शुक्रवार उत्तम हैं और तिथि—२, ३, ५, ६, ७, ९, १२ तथा १५ श्रेष्ठ हैं। भादों की छठ, कुवार की कृष्ण चतुर्दशी, कार्तिक की नवमी, अगहन की तीज, फाल्गुन की नवमी, पौष की नवमी, माघ शुक्ल चौथ, चैत्र की चतुर्दशी, वैशाख की तीज, ज्येष्ठ की गंगा दशहरा तथा पञ्चमी, आषाढ़ सुदी तीज, श्रावण शुक्ला पञ्चमी इन तिथियों में बिना विचारे मन्त्र लेना उचित है। सूर्यग्रहण सर्वोत्तम है। मंगला चौथी, रवि सप्तमी तथा सोमावती अमावास्य हो तो सूर्यग्रहण से भी अधिक फल देने वाली होती है। गुरु कृपा करके जिस दिन मन्त्र दे, वह भी समय उत्तम है।

गुरु शब्द को व्युत्पत्ति—

'गु' शब्दस्त्वन्धकारस्याद्रु शब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकार निरोधत्वात् गुरुरित्याभिधीयते ॥

अर्थात् 'गु' अन्धकार (अज्ञान) 'रु' प्रकाश (ज्ञान) जो अन्धकार को दूर करके प्रकाश करे, वह गुरु कहलाता है या गृ-निगरणे-धातु से उर प्रत्यय होने पर गुरु शब्द की सिद्धि होती है। शिष्य के अज्ञान को निगलने वाला, लीन करने वाला या (दूर करने वाला)। गुरु ज्ञान देकर शिष्य के अन्तर में प्रवेश के द्वारा अज्ञान को निगल जाय या ज्ञान देकर अज्ञान को नष्ट करे, उसे गुरु कहते हैं। शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु तथा पारमार्थिक तत्त्व का उपदेशक गुरु कई प्रकार के होते हैं। उसमें ज्ञान-दाता सत्गुरु सर्वश्रेष्ठ सदा पूजनीय होते हैं। सद्गुरु माता और पीता तथा अन्य गुरुजनों से भी अधिक हैं। माता-पिता जन्म देते हैं, संसार सागर से पार नहीं कर पाते। सद्गुरु संसार से सदा के लिए मुक्त कर देते हैं। सर्वक्लेश नाशक हैं। अकारण करुणा वरुणा लय हैं, उनके समान कोई भी नहीं हो सकता।

पूजा के फूल—शिवजी की पूजा में मालती, चमेली, कुन्द, जूही, मौलसरी, रक्तजवा (अडहुल), मल्लिका (मोतिया), केतकी (केवड़ा) नहीं चढ़ाना चाहिये।

वेलपत्र धोकर उसका डण्ठल ऊपर का हिस्सा तोड़कर उल्टा करके चढ़ाना चाहिये। शिवजी के वास्ते झाल-करताल नहीं बजाना चाहिये। शिवजी की पूजा त्रिपुण्ड्र, भस्म तथा रुद्राक्ष की माला धारण करके करना चाहिये।

सूर्य की पूजा में—विल्वपत्र तथा शंख का जल न देवें। सूर्य की सात बार प्रदक्षिणा करना तथा १२ दण्डवत करना, कनेर का फूल चढ़ाने के बाद भी धोकर चढ़ा सकते हैं। हजार कनेर के बराबर एक शमी का पुष्प होता है। हजार शमी के बराबर एक धतूरे का फूल होता है। उससे हजार गुना उत्तम पृहती का पुष्प है। उससे सहस्र गुना कमल का

फूल श्रेष्ठ है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक पृहवी (कटैया) के फूलों से शिवलिंग का पूजन करता है, उसको दस हजार गौदान का फल प्राप्त होता है। शिव का रूप हो जाता है। कार्तिक के महीने में सोमवार को धतूरे के पुष्पों से शिवजी की पूजा करे तो उसे साक्षात् शिवलोक मिलता है। जो पुरुष तुलसी के एक पत्र से शिवजी की पूजा करता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके शिवलोक में रहता है।

धूप—चन्दन, अगर, कपूर, कूठ, गुगुल के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर बनाया हुआ धूप सबसे उत्तम होता है। गुगुल शिवजी को बहुत ही प्यारा है। इसके नित्य धूप देने से अनन्त पुण्य का फल होता है।

(शिवपुराण)

श्री कृष्ण का अवतार रहस्य

अजन्मा का जन्म महोत्सव कैसा—इस रहस्य को स्वयं भगवान् ही जानते हैं। उनका जन्म कर्म दिव्य है। गोकुल में नन्द बाबा के घर कोई एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया। नन्दबाबा पुत्र की वासना में लीन थे। ऐसा अलौकिक पुत्र चाहते थे यज्ञादि कर्म से पाना असंभव था। उनकी अवस्था भी ढल चुकी थी पर नन्द का प्रेमी हृदय द्रवित रहता था। व्रजवासी गण भी भगवान् से नन्द को उत्तम पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना कर रहे थे।

इसी समय अन्तःपुर में यसोदा से नन्द जी कह रहे थे इस यज्ञ से मुझे जैसे पुत्र की इच्छा है वैसा नहीं होगा। क्योंकि—मैं जिसको सदा अपने पुत्र रूप में देखता हूँ वह अचल है। वह कर्म का फल नहीं है। मैं जिसको स्वप्न में देखता हूँ वह नारायण से भी अति सुन्दर है।

यह बात सुनकर यशोदा जी ने स्वप्न की बात पूछी। नन्द जी ने कहा—यशोदे तुम मेरी प्राण प्रिया हो मैं क्या छिपाऊँ उसे सुनो मैं स्वप्न में तथा मनोरथ में यही सदा सर्वदा देखता हूँ—

श्यामश्चञ्चलचारु दीर्घ नयनो वालस्तवांकस्थले।
दुग्धोद्गारिपयोधरेस्फुटमसौ क्रीडन् मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत् किमुजागरः किमथवेत्येतत्ननिश्चीयते।
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि स्फुरति किं सोयं तवाप्यन्तरे॥

दिव्यातिदिव्य नीलमणि सदृश श्याम सुन्दर वर्ण का एक बालक जिसके चञ्चल मनोहर नेत्र अत्यन्त विशाल है, तुम्हारी गोद में बैठकर तुम्हारे दुग्ध का पान कर रहा है और भाँति-भाँति के खेल कर रहा है। उसे देखकर मैं उपने को भूल जाता हूँ सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ मुझे कुछ पता नहीं है। सच बताओ क्या तुमने भी स्वप्न में इस बालक देख है।

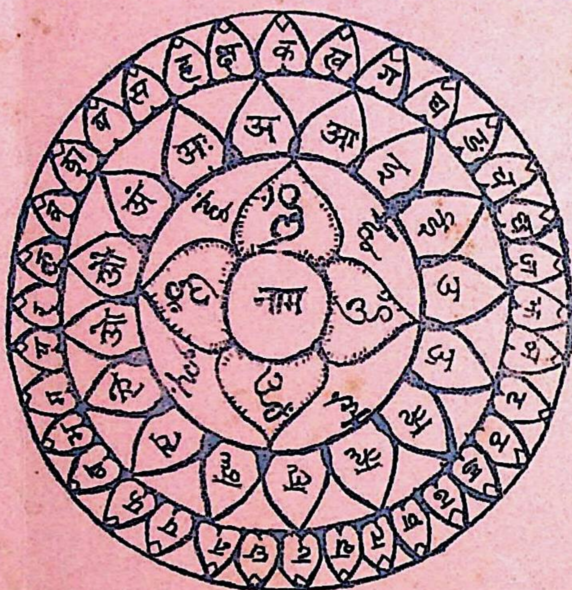
नन्द की बात सुनकर यशोदा जी परम प्रसन्न और गद्‌गद् स्वर में बोली। व्रजराज ? सचमुच मैं भी ठीक ऐसे ही बालक को सदा अपनी गोद में खेलते देखती हूँ। स्वप्न में उसे दूध पिलाती हूँ लाड प्यार करती हूँ। मैंने भी इसे पाना अति असम्भव समझ कर ही संकोचवस कभी आपको यह बात नहीं बताई थी। कहाँ मैं एक गोप की स्त्री और कहाँ दिव्य पारसमणि ! यह सुन कर नन्द बाबा बोले—ज्ञात होता है कि अखिल ब्रह्माणनायक भगवान् नारायण की कृपा दृष्टि से यह अलौकि दृश्य की दृष्टि गोचर हो रही है।

तदन्तर नारायण की सेवा में दृढनिष्ठा रखते हुए नन्द यशोदा ने तन, मन, वचन से एक घर्ष के लिये श्री हरिकी अतिप्रिय द्वादशी व्रत आरम्भ कर दिया। नन्द यशोदः के द्वादशीव्रत के संख्या के साथ ही साथ स्वप्न में देखे हुए दिव्य परम सुन्दर बालक को पुत्र रूप में पाने की इच्छा प्रतिदिन बढ़ती गयी। व्रत नियमपूर्ण हुआ। तब उन्होंने सामान्य निद्रा में स्वप्न में अपने इष्टदेव को चतुर्भुजी रूप में देखा भगवान् नारायण ने उन दोनों के समीप आकर कृपा दृष्टि करते हुए अति मधुर वाणी में कहा—अहो नन्द यशोदे तुम मुझ में आसक्त और मेरे परम भक्त हो। तुम इतने खिन्न होकर क्यों विलाप करते हो। अलसी के फूल के समान श्याम सुन्दर सुकुमार बालक तुम्हारी अनुभूति का विषय वककर तुम्हारे पुत्र रूप में तुम्हारे मन में नित्य निरन्तर क्रीड़ा करता है वही तुम्हारा अनुगामी है।

जगत् में वात्सल्य-प्रेम का प्रचार करने के लिए मेरी प्रेरणा से तुम्हारे ही अंश से द्रोण और धरा के रूप में स्वर्ग में प्रकट होकर प्रत्येक कल्प में तीव्र तपस्या किया करते हैं। उनकी तपस्या का फल ब्रह्मादि के लिये भी अलभ्य है नारायण की यह दिव्य वाणी सुनकर उस दिव्य बालक को पुत्र रूप में प्राप्त करने की प्रतीक्षा करने लगे यही स्थिति श्री यशोदा जी की भी थी।

(वृन्दावन चम्पूः) इति

अथ रक्षायन्त्र



इस रक्षायन्त्र को कुमकुम (केशर) या मलया गिरि चन्दन से शुभ दिन या अच्छे नक्षत्र में भोजपत्र पर लिखकर श्वेत सूत्र में लपेट कर रेशमी वस्त्र से ढंककर कलश स्थापन करके पूजा करे और धारण करे तो सभी रोग शान्त होते हैं। शत्रु का भय भी नहीं रहता।—(अग्निपुराण)